

प्रकाशक :-- * मुद्रक :---

श्रीगदाधरगोरहरि प्रेस, श्रीहरिदास निवास, कालीदह, ट्टन्दावन मथुरा (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशनतिथि :— ॐ विष्णुपाद श्रील विनोदविहारी गोस्वामिमहोदयस्य तिरोभावतिथिः पौष कृष्णद्वितीया १२।१२।८२१ श्रीगौराङ्गाब्द ४६५

प्रकाशन सहयोग-

प्रथमसंस्करणम्

* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *



श्रीमन्नरहरिमुखचन्द्र विनिःसृता तथाश्रित— श्रील लोकानन्दाचार्य्य समाहृता ।

श्रीवृन्दाबनधामवास्तव्येन

न्याय-वैज्ञेषिकशास्त्रिन्यायाचार्यकाव्यव्याकरणसांख्य मीमांसावेदान्ततर्कतर्कतर्कवैष्णवदर्शनतीर्थ विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादिता ।

सद्ग्रन्थप्रकाशक-

श्रीहरिदासशास्त्री श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदासनिवास, कालीदह, वृन्दाबन, जिला—मथुरा । उत्तर प्रदेश * श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *



कान्तं शान्तमशेषजीवहृदयानन्दस्वरूपं परं सर्वात्मानमनन्तमाद्यममलं विश्वाश्रयं केवलम् ॥ भक्तचानन्दरसैकविग्रहवरं भक्तै क भक्तिप्रियं। भक्तावेशधरं विभुं कमपि तं गौरं सदोपास्महे ॥

भक्तगणों के चकोरायित चित्तका आनन्द वर्द्धक 'श्रीभक्तिचन्द्रिका' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, ग्रन्थसंङ्कलयिता विश्रुतकीर्त्ति श्रीमल्लोकानन्द हैं, श्रीमन्नरहरिमुखनिर्गलित विषयों का सङ्कलन ग्रन्थकार श्रीलोकानन्द महोदयने किया है, ग्रन्थकार प्रणीत परमोपादेय अपर ग्रन्थ ''भक्तिसारसमुच्चय'' है। प्रस्तुत निबन्धमें स्वभजन विभजन प्रयोजनावतार श्रीश्रीभगवत् श्रीश्रीमच्च तन्यदेव की सर्वतन्त्रस्वतन्स्त मन्त्रावलि सम्बलिता भजन पद्धति का वर्णन हैं।

"श्रुतिस्मृति पुराणादि पाश्वरात्र विधिविना

ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैवकल्पचते ॥"

इस नियमसे ही शास्त्रीय विधानयुक्त अचंनादि विहित है, ''श्रद्धा विशेषतः प्रीतिः श्रीमूर्त्तेरङ्घ्रि सेवने'' आदेश के अनुसार श्रद्धापूर्वक श्रीविग्रह की अर्चना एकान्त ग्रावश्यक है। देवताके उद्देश्य से उन देवताके मन्त्रद्वारा समग्रोपचारोंका अर्पण ही शर्च न है, वह भी आगमोक्त आवाहनादि क्रमसे ही होता है।

" शुद्धिन्यासादि पूर्वाङ्ग कर्मनिर्वाह पूर्वकम् ।

अर्चनन्तूपचाराणां स्यान्मन्त्रेणोपपादनम् ॥"

इस निर्देश से भक्तत्रुन्द को वित्तशाठ्य वर्जन पूर्वक देवार्च न करना एकान्त कर्त्तव्य है, इस में मतद्वैध नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उक्त विषयों का सुविशद् वर्णन है। यह ग्रन्थ अष्ट पटलसे निबद्ध है। प्रथम पटलसे तृतीय पटल पर्यंन्त —श्रीगौरमन्त्रोद्धार पूर्वक नित्य- कृत्य की सविशेष विद्रुति है। चतुर्थ में—दीक्षा प्रणाली का वर्णन है। पञ्चम में —श्रीअद्वैताचार्य रचित श्रीमन् महाप्र भुके प्रत्यज्ज वर्णन स्त्रोत्र है। षष्ट में —द्वचक्षरादि मन्त्रोद्धार एवं साधन विधि है। सप्तम में — ३२ अक्षरात्मक महामन्त्र का माहात्म्य, नामभेद, संख्यानियम, अचन प्रकार एवं पुरश्चरणादि वर्णित है। अष्टममें— सकाम भक्तदृत्वके निमित्त काम्यसाधनोपाय, पुरश्चरणान्त कर्मसमूह का वर्णन है, उासंहार में द्विविध साध्यसाधन भक्ति साधनोपाय का वर्णन समीचीन रूपसे है। यह ग्रन्थ अति प्रामाणिक होनेपर भी इसका बहुल प्रकाशन नहों हुआ है। कारण, — यह ग्रन्थ मन्त्रानुष्ठान वर्णनात्मक हैं। इस ग्रन्थके पुष्टिकावाकच में लिखित है—

''पूर्वं श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रस्यमनुमुत्तमम् ।

तस्माद् दशाणं माद्यन्तु लब्ध्वा रघुनन्दनः ॥

इति श्रोमन्नरहरिमुखवन्द्रविनिसृतश्राचैतन्यमन्त्रनुघानिकराः श्रीलोकानन्दाचार्य्येणयत्किचिदास्वाद्य श्रोश्रोजगन्नाथस्यसाक्षाच्छी -भागवतोत्तमसभायां प्रकाशिताः ॥"

श्रीहरिदासशास्त्री

सूचीपत्रम्

·····?********

प्रथमपटलस्य

			~
विषय:			पृष्ठे
मङ्गलाचरणम्	=		\$
श्रीश्रीभगवतोमन्त्रमूत्तिकत्वम्	=	=	2
श्रीकृष्णचैतन्यनाम्नोनिरुक्तिः	1959 - 555	=	ર
तन्नाममयमन्त्रख्यातिः	=	=	
तत्रारिमित्रादिचिन्तानिरासः		=	99
सर्वाधिकारित्वम्		=	8
तन्मन्त्रस्य प्रेमप्रदत्वम्		=1	
ग्रन्थनामनिरुक्तिमुखेन	=	:::::::::::::::::::::::::::::::::::::	11
प्रयोजनादिकथन म्		, = 17	99
सवीजमन्त्रोद्धारः			99
वीजभेदेनमन्त्रभेद:		=	x
अथचय्यविधिकथनम्		=6.74	\$1
तल बाह्यमुहूत्तीत्थानम्	=	<u> </u>	er.
श्रीगुरुपूजादिविधि:		=	88
स्नानविधिः	- =		11
भगवत्तर्पणविधिः		a b == a p a	9
पूजागृहगमनविधिः			19
भूतोत्सारणम्	- =		5
आत्मशुद्धिः	- =		09-3
आसनबन्धादिबिघ्नापसारणम्		= 101	,,,
करशुद्धचादिवह्निप्राकारपर्यंत	तम् =	=	11
भूतशुद्धिः	=	=	
जीवन्यासविधिः	=		88
	(क)		

विषय:			£ 377
तन्मन्त्र कथनम्	FEFFE		पृष्ठे
			85
द्वि	तीयपटलस्य		
मातृकान्यासविधिः	=	=	82-80
वासुदेवादिन्यासविधिः	÷ .	=	
तन्मन्त्रोद्धारविधिः	=	=	, ,
तृत	तोय पटलस्य		
मन्त्रन्यासविधिः	= =	17TO BE	39-29
तत्स्थाननिर्णयः		11-11	
ऋष्यादिकथनम्			,,
तन्नचासविधिः		. B-DERI	
अथमन्त्रपदन्यासविधिः			,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,
तदङ्गकल्पना			93
कराङ्गन्यास प्रकारः		- 772	20-28
पीठन्यासविधिः			22
तच्छक्तिनिर्णय:		p-appi	,,
तन्मन्त्रोद्धारः			२३
दिग्बन्धनादि			23
श्रीमन्नवद्वीप ध्यानम्		_	en fafa:
तत्र श्रीभगवद्धचानम्		- 11811	1
अथ मानमपूजा तत्नोपचार	निर्णयदच	ifafa-	२३
मन्त्रजपतदर्पणविधिः		- p	२४
आत्मसमर्पणम् तन्मन्त्रोद्धार	হেৰ —		२४
तत् प्रकार कथनम्	ारणम् ——	विदिष ्या ।	1000000000
चतुर्थपटलस्य			
अथदीक्षाविधि:		_	२६
कल्पदृष्ट्या मन्त्रजपनिषेधः		afa:	
	(ख)		,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

विषय:		पृष्ठ	
प्रथम दक्षिणाविधिः	-	- 75	
गुरुशिष्यलक्षरणम्	-	- २७-२१	
गुरूपसत्तिप्रकारः		- ३०-३१	
मासादिविचार:		- ,,	
अथसामान्यपूजाविधिः		- "	
अथशङ्खस्थापनम्	-	- "	
घटस्थापनविधिः	-	- ३२-४०	
तत्र यन्त्रोद्धारः	-		
तत्रासनादिपूजा भगवन्मूत्तिस्था	पनश्च	- "	
भगवदावाहनादिविधिः	_	- n	
सर्वोपचारदानम्		- 11	
पञ्चपुष्पाञ्जलिदानम्	-	- "	
अथावरण देवता पूजा		- 11	
अथ धूपादि नैवेद्यान्तदानविधिः		- 91	
ततो होमवल्यादिदानम्		- 37	
उद्वासनविधिः			
ततोगुरुशिष्ययोः शेषकृत्यम्	-	- 88	
अथ मन्त्रदानविधिः	_		
तदन्तेसमयशिक्षादि	-	- 85	
गुरुदक्षिणादानम्	-	- ४३	
मन्त्रपुरइचर्या	-	- "	
पञ्चमपटलस्य			
प्रत्य झुवर्णन स्त्रोत्रम्	_ infahri	- ४४-४२	
		an arriantainean	
षष्ठपटलस्य			
द्वचक्षरादिमन्त्रोद्धारः		- 22	
ऋष्यादि निर्णय पूर्वकसध्यानपू	जाविधिः	,, होवहकोजस्य <u>-</u>	
	(ग)		

ावषय:			पृष्ठ
अथ त्रयोदशाक्षरमन्त्रोद्धारः	-		- **
तत् पूजाविधि:			- ×Ę
अथ प्रेमाख्यमन्त्रोद्धारः			-
तत् पूजाविधि:			
तदावरणदेवतापूजादि	-		<u> </u>
	प्तमपटल	१९५	
ग्रथ महामन्त्रकथनम्			3X —
तन्माहात्म्यकथनम्	-	a states	- ६०
अथ तस्योद्धारः			-
तन्निदिष्टनामनिरुक्तिः	-	-	- ,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,
तत्रनाम्नां संख्याभेदेफलभेदः		-	
सम्बोधनपदसार्थकचम्		-	
मन्त्रे भक्तिमुक्तयोविरोधाक्षेपः	-	and and the second	
तत् समाधानम्			- ६२-६४
अथऋष्यादिनिइचय:	-	- 1.	
तदङ्गकरन्यासप्रकारः			- ६४-६९
तन्मन्त्रयन्त्रोद्धारः	-	1	- "
अथ भगवद्धचानम्		-	
अथावरणपूजा		-	- "
तन्मन्त्रपुरइचरणम्		-	
"			
	टमपटल	ास्य	
सकामभक्तानां मन्त्रसाधनवि	धः		33
तत्र सारस्वतवीजस्यप्रयोगफल	गम्		- ,,
अथ श्रीवीजस्य	一直多行	spap -	- 90
अथ शक्तिवीजस्य		-	- 15
अथ नृसिंहवीजस्य		PETERI N	क्रयादि निर्णय पुरं-
	(2)		

विषय:			पृष्ठे
अथ प्ररगववीजस्य	=	. =	७२
अथ प्रतिकाम्यंक्रियाभेदफलम्		=	19
म्रथ सिद्धप्रयोगविधिः	=	=	
ग्रथ पुररुचय्यीविधिः	_	=	50
अथोपसंहारवाकचम्	=	=	60
अथ पुष्पिका वाकचम्	=	=	50

÷ इति सूचीपत्रम् ॥ ÷

* श्रीश्रीगदाधरगौरहरि जयति *

श्रीश्रीभक्तिचन्द्रिका

कान्तं शान्तमशेषजीवहृदयानन्दस्वरूपंपरं । सर्वात्मानमनन्तमाद्यममलं विश्वाश्रयं केवलम् ॥ भक्तघानन्दरसैकविग्रहवरं भक्तैकभक्तिप्रियं । भक्तावेशधरं विभुं कमपि तं गौरं सदोपास्महे ॥१॥

0:米米米:0 — —

नत्वा श्रीकृष्णचैतन्यं गदाधरसमन्वितम् । चन्द्रिकाया मितां व्याख्यां करोति हरिदासकः ॥

जो कान्त, अर्थात् निज माधुर्यं महिमा में परम मनोहर है, शान्त, अर्थात् अचिन्त्य ऐश्वय्यं प्रभाव पूर्णकाम होने से सर्वथा क्षोभशून्य है, मुक्त मुमुक्षु भक्तीच्छु विषयी भेदसे-स्थावर जङ्गम भेदसे द्विविध जीव निचय के हृदयस्थित आनन्द स्वरूप है, अर्थात् अखण्ड ग्रानन्द रूपमें प्रतीयमान है, अतएव पर है, ग्रथति भगवद रूपमें परतत्त्व, परमात्मा रूपमें सवकी आत्मा है, सुतरां अनन्त अर्थात् कालतः देशतः वस्तुतः त्रिविध परिच्छेद रहित है । आद्य– अर्थात् यह परिदृश्यमान विश्वके निमित्त, उपादान कारण स्वरूप हैं, तथापि अमल ग्रथति मायारूप उपाधि सम्बन्ध वर्जित होनेसे निन्य बुद्धमुक्त स्वभाव हैं, तथापि विश्वका आश्रय हैं, अर्थात् कारण रूपमें, प्रलय कालमें आधार रूपमें निखिल ब्रह्माण्डका एकमात्र अवलम्बन स्वरूप है, अतएव केवल तदतिरिक्त तत्त्ववस्तु न होने से अद्वितीय वस्तु हैं। जो भक्तिरूप निज चिन्मय आनन्द रसका ही एकमात्र परिणामभूत श्रीविग्रहके द्वारा जगत् में वरणीय हैं, भक्तगरण की निष्काम, अव्यभिचारिणी भक्ति ही जिनका प्रिय है, अर्थात् स्वरूप सुखोल्लासक, किम्बा भक्तगणके मध्यमें जो एकभक्ति अर्थात् एकान्त

कामाग्निमायाशशिवद्धमूर्त्ति नीमामृताब्धिविहरन्स्वशक्तघा नामैकगम्योरससारमूर्त्ति नीमात्मको नामविनोदकारी ॥२॥

भक्त हैं, उनके प्रिय हैं, यहाँतक कि आपने भक्तप्रीति की पराकाष्ठा को प्रकाश करने के लिए भक्त वेशधर हुये हैं, अर्थान् भक्तभाव का आस्वादन हेतु भक्तभाव को अङ्गीकार कर घराधाममें अवतीर्ण हुए हैं। अग्नितप्त लोहादि में अग्नि व्यपदेश के समान यह अभेद भाव है, स्वरूपतः नहीं है, तथापि विभु हैं, निज अचिन्त्य स्वरूपभूत शक्ति द्वारा विश्वव्यापक हैं, एवम्भुत अनिर्वचनीय स्वभाव सम्पन्न उन सुप्रसिद्ध साक्षादनुभूत चरणारविन्द श्रीगौराङ्गदेव की उपासना हम सव करते हैं। यहाँ वयम्- "हम सव" बहुवचन का प्रयोग, सम्प्रदाय को लक्ष्यकर ही हुआ है, अर्थात् स्वयं आचरण कर जगत् को शिखाने के लिए है, वर्त्तमान कलियुगमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभु की उपासना करना कालपरम्परागत जीवमात्रका ही एकान्त कत्तंव्य है, इसमें हमसव साक्षी हैं। यह उपासना नित्य एवं सत्य है,वत्तंमान कालका प्रयोग क्रियामें, एवं 'सदा' शब्दका प्रयोगसे वह सचित हुआ है। सुतरां इस विषयमें निःसन्दिग्ध प्रवृत्ति ही जीवके लिए श्रेयस्करी है। प्रारिप्सित ग्रन्थका अभिधेय-श्रीगौराङ्ग की उपासना ही है, तज्जनित परतत्त्व साक्षात्काररूप परम पुरुषार्थ लाभ ही प्रयोजन है, ग्रन्थके साथ इसका प्रतिपाद्य प्रतिपादकतारूप सम्बन्ध है, श्रीमन्महाप्रभुके मन्त्रसे दीक्षित मानव ही इस ग्रन्थके अध्ययनमें अधिकारी है, शास्त्रसिद्ध अनुबन्ध चतुष्टय निर्दिष्ठ होनेसे इस प्रारिप्स्यमान । अमन्द निवन्धके अनुशीलन में सहृदय मानवों की प्रवृत्ति भी अवश्यम्भाविनी होगी ॥१॥

मङ्गलाचरण श्लोकमें साक्षात् परमेश्वर रूपमें- सदोपास्य रूपमें जिनका स्वरूप निरूपण हुआ है, उन श्रीगौराङ्गदेव स्वयं ही मन्त्र-मूर्त्ति हैं, सुतरां उनका स्वरूप, काम, अग्नि, माया, चन्द्र है,काम--क, अग्नि-ल, माया-ई, चन्द्रविन्दु यह सव शब्द सङ्क्रेतमय वर्गा

भक्तीशयोरभेदेन कृष्णचैतन्य उच्यते । भेदात् कृष्णस्य भक्तेश्च प्रसिद्धि स्तत्त्ववेदिनाम् ॥३॥ नामचिन्तामणिः ख्यातो नामरूपी जनार्दनः । स एव कृष्णचैतन्य स्तस्यनामात्मकोमनुः ॥४॥ अवारिमित्रचिन्तापि न कार्य्या राशिभेदतः । सर्वात्मा सर्वन्बधुश्च सर्वमित्रं जगत्पतिः ॥४॥

3

समवायसे नित्य सम्बन्धान्वित हैं, अर्थात् आप साक्षात् मन्त्र-वीजात्मक एवं निखिल निज नामरूप अमृत प्रवाहके समुद्र तुल्य परमाश्रय हैं, स्वरूपभूत निज अचिन्त्य शक्तिके साहाय्यसे विचित्र लीलाको प्रकटकर मन्त्र निर्दिष्ट नाम द्वारा एकमात्र प्रतिपाद्य होते हैं। कारण उनकी श्रीविग्रह निखिल रसके मध्यमें साररूप प्रेमरस श्टङ्गार रसमय हैं। आप स्वयं नाममय हैं एवं श्रीनामस्वरूप द्वारा भक्तचित्त विनोदन करते हैं।।२।। भक्ति एवं भगवत्तत्त्वके अभेदालम्बनसे ही 'श्रीकृष्णचैतन्य' संज्ञासिद्ध होती है, एवं भेदावलम्बनसे तत्त्वज्ञगणके निकट श्रीकृष्ण, उनकी भक्ति आश्रया-श्रयिभावसे, आधाराधेय रूपमें स्थित हैं, भगवच्छक्तिके अचिन्त्यता-निबन्धन उक्त सिद्धान्त भक्तिशास्त्रमें सुप्रतिष्ठित है, यह अचिन्त्य भेदाभेद वाद है।।३।। नाम, सर्वाभीष्ठ प्रद है, सुतरां चिन्तामणि कहा जाता है, केवल यह ही नहीं, किन्तू श्रीकृष्ण, साक्षात् नामरूपी हैं। श्रीकृष्णचैतन्य ही कलियुग में श्रीकृष्णस्वरूप हैं, यह शास्त्र सम्मत है, अतएव उनका नामात्मक मन्त्र एवं उनका स्वरूप अभिन्न है ।।४।। श्रीकृष्णचैतन्य देवके नामात्मक मन्त्रमें राशि तदुपलक्षित नक्षत्र भेदानुसार शत्रुमित्रादि विषयक दोषगुण का विचार करना आवश्यक नहीं है। कारण—जगत्पति श्रीचैतन्यदेव सव जीवके आत्मा, बन्धु, मित्र हैं। यह सव स्वरूपगत धर्म उनके मन्त्रमें भी अधिष्ठित हैं। सुतरां उनके समान मन्त्रभी साधकगणके

सर्वेऽधिकारिणस्तत्न पूजाचर्याजपादिषु ॥६॥ मनवो बहुशस्तस्य धर्मकामार्थमोक्षदाः । सतां भागवतीभक्तिप्रदाः प्रेमप्रदाः क्वचित् ॥७॥ भक्तिप्रकाशं विधिवच्चन्द्रज्योत्स्नेव चन्द्रिका । कत्नींचेन्नामतो भक्तिचन्द्रिका कथ्यतेव्रुधैः ॥ कर्त्नींचेन्नामतो भक्तिचन्द्रिका कथ्यतेव्रुधैः ॥ तदर्थं मन्त्रचर्याणां विधानं कथ्यते क्रमात् ॥८॥ तत्वादावुद्धरेन्मत्नांस्ततश्चर्याविधि क्रमात् । तेनैव जो जपेन्मन्त्रं लभतेसिद्धिमुत्तमाम् ॥६॥ मन्त्रोद्धारमहं वक्ष्ये सर्वकामार्थसिद्धये । कामो धरित्नीमायेन्दुकलितः स्याद्वतिप्रियः ॥

8

लिए परममित्र है, किन्तु शत्रु नहीं है।। रा। मन्त्रदेवतात्मक श्रीभगवद् विषयक पूजा, जप आदिमें स्त्री शूद्रादि, सभी मनुष्य समान अधिकारी हैं । मन्त्राधिकार भिन्न पूजादि में अधिकार नहीं होता है। सुतरां मन्त्राधिकार भी सार्वलिक है। ६॥ श्रीकृष्ण-चैतन्यदेवके मन्त्र समूह,-अनेकानेक सकाम भक्तगण को धर्म, अर्थ, काम, त्रिवर्ग एवं ज्ञानी भक्तको मोक्ष प्रदान करते हैं, जो केवल शुद्धभक्ति की कामना करते हैं, उन सबेको साधनरूप साध्यरूप दिविध भक्ति प्रदान करते हैं ॥७॥ चन्द्रकी प्रभा जिस प्रकार वस्तु प्रकाश अथवा प्रीति प्रकाश कर चन्द्रिका नामसे भूषित होती है, उस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थभी यथाविधि भक्तिका मत, एवं भक्तिका प्रकाश कर बुधगणके द्वारा 'भक्तिचन्द्रिका' नामसे अभिहित हुआ है, उस भक्ति प्रकाशके निमित्त यथाक्रमसे मन्त्र, एवं नित्यकर्म समूहका अनुष्ठान प्रकार भी कथित होता है।। । पूर्वोक्त मन्त्र एवं चय्यी विधानके मध्यमें प्रथम मन्त्रका उद्धार करें। अनन्तर यथाश्रमसे नित्यकर्मानुष्ठान करें। इस क्रमसे जो जन मन्त्र जप करेगा, वह परिणाम में सर्वोत्तमफल प्रेमलाभ करने में समर्थ होगा ॥१॥

अजो वह्निरमायुक्तश्चन्द्रखण्डयुतः परः । प्रेमाख्योनाम वीजोऽयं प्रेमभक्ति प्रदायकः ॥ कृष्णचैतन्य ङे वंहिजायान्तो मनुरुत्तमः । जपादस्यैव मन्त्रस्य सर्वसिद्धि व्रजेन्नरः ॥१०॥ राँ ऐँ ह्रीँ कमलावीजं प्रत्येकेन नियोजयेत् । कामस्थाने नृसिंहुञ्च वेदादिषड़् विधो मनुः । एकेन साधयेत् सर्वं प्रेमभक्ति विशेषतः ॥११॥ एषामेकतमं मन्त्रं जो जपेत् स महामुनिः । स्तुत्यते सर्वदेवैश्च स च भागवतोत्तमः ॥१२॥ अथ चर्य्याविधि वक्ष्ये सर्वमन्त्रार्थसाधनम् । सिद्धो न जायते मन्त्रो विना येन जपादिभिः ॥१३॥

x

सर्वकामी जनगण की अभीष्ट सिद्धिके निमित्त मन्त्रोद्धार का प्रकार कहते हैं, प्रथम कामवीज, उसका स्वरूप क-ल, ई, चन्द्रविन्दु वर्णचतुष्टयके योग सिद्ध होता है, तदनन्तर प्रेमवीज, उसका स्वरूप, ककार रेफ, दीर्घ ईकार चन्द्रविन्दुके सहित संयुक्त होकर निष्पन्न होता है। पश्चात् कृष्णचेतन्य शब्द चतुर्थ्यन्त; स्वाहान्त होनेसे ही दशाक्षर सर्वोत्तम मन्त्र सम्पन्न होता है, केवल दशाक्षर मन्त्रका जप यथा नियमसे होनेसे साधक सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होता है। १० राँ, ऐँ, हीँ, कमलावीज श्रीँ, नृसिंह वीज क्ष्रौँ, ओं, यह षड़ विध वीज, पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्रके साथ युक्त होकर दशाक्षर मन्त्रराज षड़ विध होगा। साधक उक्त षड़ विध मन्त्रके मध्यमें कोई एक मन्त्रसे सवफल साधन कर सकोंगे। प्रेमभक्तिरूप महाफल साधन भी विशेष रूपसे होगा। ॥११॥ पूर्वोक्त षड़ विध मन्त्र समूहके मध्यमें जो एक मन्त्रका जप करेगा, वह महामुनित्व प्राप्त करेगा, एवं महाभागवत रूपमें सव देवतागराके स्तुति योग्य होगा॥१२॥

बाह्ये मुहूर्त्त उत्थाय साधकः स्थिरवुद्धिमान् । भालाम्बुजे गुरुं शुद्धं गौरवर्णं स्मिताननम् ॥ शुक्लमाल्याम्बरधरं शुभ्रचन्दनशोभितं । स्वस्तिकासनसंविष्टं व्याख्यामुद्राकराम्बुजम् ॥ धात्वैव तत् पदाम्भोजरजोभिर्वपुरात्मनः । संशोध्य हृदिदेवेशं सञ्चिन्त्य तत् पदाम्बुजे यथा शक्तिजपेन्मन्त्रम्—॥१४॥ आत्मानं तन्मयं पुनः— भावयन् प्रातरुत्थाय स्नानार्थञ्च जलाशयं ।

E

गत्वा स्नात्वाजले कृत्वाचतुरस्रश्च मण्डलं ॥

अनन्तर जिसके विना जपादि की निष्फलता होती है एवं तज्जन्य मन्त्रादि सिद्ध नहीं होते हैं, उनसव मन्त्रार्थकी साधक चर्याविधि को कहूँगा । १३॥ स्थिर सङ्करण साधक,-ब्राह्ममृहूत्तं में भगवन्नाम कीत्तन करते करते शय्या त्यागकर श्रीगुरुदेव का ध्यान करे, श्रीगुरुदेव, परमात्म स्वरूप हैं, शुद्ध अर्थात् प्राकृत दोषास्पृष्ठ, गौरवर्गा, शिष्यवर्गके प्रति अनुग्रह परायणताके कारण सर्वदा स्मेरमुख हैं, जो शुद्ध सत्वमय, श्वेतवर्णमाल्य एवं शुश्र वसन धारण किए हैं। श्वेतचन्दन विलेपन द्वारा सर्वाङ्ग सुशोभित है,स्वस्तिकासन में उपविष्ट एवं जिनके करपङ्कज व्याख्या मुद्रायुक्त हैं। इस प्रकार शिर:स्थित सहस्रदल कमलोपरि श्रीगुरुदेव का ध्यान करें। पश्चात् उनके चरण पद्मके पराग समूह द्वारा निज शरीर सम्यक् शुद्ध हुआ है, इस प्रकार भावना करके हुदयके मध्यमें सर्वदेवेश्वर श्रीमन् महाप्रभुका ध्यान कर उनके श्रीचरण पद्ममें यथाशक्ति मूलमन्त्र का जप करें। किन्तु जप समर्पण के समय विज्ञापन वाकघ दारा अपना समस्त कत्तंव्य कर्म समर्पण करके चारवार साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे। यह ही शिष्टाचार सिद्ध रीति है।।१४।। पुनइच अपने को

तत्रैवाहयेन्मन्त्री तीर्थानि मनुनाधुना । गङ्गे च यमुनेचैव गोदावरि सरस्वति ॥ नमंदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु । इत्यनेनाङ्क्रुशेनैव मुद्रया सूर्य्यमण्डलात् ॥११॥ तताष्टधाजपन्मन्त्रं शिरस्यञ्जलिमष्टधा । दत्वा तत्र त्रिधाप्लुत्य कृत्वा सन्ध्यादिकं सुधीः ॥ कामं प्रेमाख्यमुच्चार्य कृष्णचैतन्यमादरात् । तर्पयामीति मन्त्रेण पर्श्वविंशतिमञ्जलीन् ॥ दत्त्वा निर्वर्त्त्यं विधिवत् स्नानं साधकसत्तमः । पूजागृहद्वारदेशे शुच्चिर्मूत्वोपविश्य च ॥ संपूज्य द्वारपालांश्च देहलीं लङ्कयेत् ॥१६॥

19

मन्ताबिष्ट रूपमें भावना करे। प्रातः कालमें स्नान के निमित्त गृहसे निर्गत होकर जलाशयके तीरमें गमन करे, स्नानोपयोगी धौत वस्तादि उस स्थानपर रखकर प्रथम एकवार निमज्जन करे, पश्चात् उक्त जलमें एकचतुष्को एा मण्डल की रचना पूर्वक मन्त्रवित् साधक उक्त मण्डलके मध्यमें ''गङ्गे च यमुनेचैव" मन्त्र द्वारा उस समय सूर्यमण्डल से अङ्क श्रमतुद्रा प्रदर्शन पूर्वक गङ्गादि तीर्थ समूह का आवाहन करे ॥१४॥ जलस्थ चतुष्कोण मण्डलमें ग्रष्टवार मूलमन्त्र का जप करे। निज मस्तकमें अष्टवार जलाञ्जति देकर उक्त जलमें तीनवार अवगाहन करे, पश्चात् सुधी साधक काम एवं प्रेमवीजका उच्चारण यथाक्रमसे करके आदर पूर्वक 'श्रीइष्णचैतन्यं तर्पयामि नमः' मन्त्रसे पञ्चविंशतिवार श्रीभगवान् का तर्पण करे। अनन्तर पूजा-गृहके द्वारदेश में अति पवित्र होकर उपवेशन पूर्वक श्रथम द्वारपाल गणकी पूजा करे, तत्पश्चात् देहली उल्लङ्घन पूर्वक श्रीमन्दिर में प्रवेश करें ॥१६॥

ततः — आसनस्थोऽपि भूतानां शान्तिकर्म समाचरेत् । उत्पतन्तीह भूता ये पृथिव्यम्बरवासिनः । पृथ्वि त्वया घृतालोकावेवि त्वं विष्णुनाघृता । त्वश्रधारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ॥ इत्यामन्त्र्यासनं मन्त्री तथा धारादिपश्चभिः । पूजयित्वा तु तत्रैव प्राड्मुखः साधकोत्तमः । पूजयित्वा तु तत्रैव प्राड्मुखः साधकोत्तमः । स्वस्तिकासनसंविष्टो वामाङ्घिघातनव्वयं । ऊर्द्धतालवयं दत्त्वा दृष्ट्यापूजालयाद्वहिः । भौमान्तरीक्षदिव्यांस्तान् विघ्नान्निःसारयेत् ॥१७॥ ततः – अस्त्रेण गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य साधकः । पुनरस्त्रेण संप्रोक्ष्यगन्धं पुष्पं जलं ततः । अमृतीकृत्य मूलेन कुर्यान्मन्त्रितमुत्तमम् । ततः स्फोटिकया कुर्याद्दिग्बन्धनमतः परम् ।

5

तदनन्तर जो सव पृथिवी एवं आकाशवासी भूतगण श्रीभगवानके पूजाकार्य में विघ्न उत्पादन करते हैं, आसनस्थ ग्रथवा भूमिष्ठ होकर उक्त भूतवर्ग की शान्ति विधान करें। पश्चात्, पृथ्वि ! त्वया घुतालोकाः मन्त्र द्वारा आसन को अभिमन्त्रित करके ''ओं आधार शक्तये नमः'' कहकर पूजाकरे। पूर्वास्य होकर साधक प्रवर स्वस्तिकासन में उपवेशन पूर्वक वाम पदकी पार्डिणके द्वारा तीनबार ग्राधात कर अर्धार्ध क्रमसे तिनवार करतालि प्रदान करे। दिव्य दृष्टिके द्वारा पूजागृहके वहिर्भाग में यथाक्रमसे भौम अन्तरीक्ष दिव्य (पृथिवी आकाश स्वर्गवासी) भूतगणको अपसारित करे । १९७।

तदनन्तर 'अस्त्राय फट्' अस्त्र मन्त्रसे गन्धपुष्प द्वारा करयुगल शोधन करे । साधक पूजार्थं यथा स्थानमें सुसज्जित गन्ध पुष्प

प्राकार वितयं वह्ने विधाय तस्य मध्यतः । स्थित्वाचरेद्भूतशुद्धि यथाक्रममनन्यधीः ॥१८॥ ज्ञानकर्मे न्द्रियैर्भू तैः सूक्ष्मभूतैश्च पश्चभिः । प्रकृत्या मनसा वुद्धचाप्यहंकारेण शुद्धधीः ॥ स्व स्व कार्ययुतैर्जीवं सुषुम्नावर्त्मना ततः । नीत्वा ब्रह्मणि संयोज्य सोऽहमित्येव योजयेत् ॥१६॥ शून्यं शरीरं सश्चिन्त्य वायुवीजानि षोड़ग । वामनासापुटे धीमान् जपन् यत्नेन शुद्धधीः ॥ वामनासापुटेनैव वायुमाकृष्य वायुना । तेन नाभिस्थितं वायुमण्डलं वर्द्ध येत्ततः ॥

23

जलादि पात्रको अस्त्र मन्त्रपूत जल द्वारा प्रोक्षित एवं अमृत वीज द्वारा अमृतात्मक करके आठवार मूलमन्त्र का जप करें। पश्चात् स्फोटिका मुद्रासे अस्त्रमन्त्र द्वारा दिग्बन्धन, पश्चात् बह्ति वीजके द्वारा अग्निमय प्राचीर त्रयके मध्यमें मैं हूँ इस प्रकार चिन्ताकर एकाग्र वुद्धिसे भूतशुद्धि करें ॥१८॥ ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, महाभूत, सूक्ष्मभूत प्रत्येक पाँच पश्वभागसे विभक्त है, सुतरां वे विंशति संख्यकके होते हैं, प्रकृति, मन, बुद्धि, अहङ्कार, निज निज असाधारण व्यापार विशिष्ट है, यह चतुविंशति तत्त्व है, इसके साथ जीवात्मा को मुपुम्नाके पथसे षट्चक्रको भेदकर शिरस्थित अधोमुख सहस्रदल कमलके कर्णिकामें स्थित परमात्माके सहित योजनाकर सोऽहं मैं उन श्रीभगवानके चिद्रूप ग्रंश नित्यशुद्ध ज्ञानमय मुक्तस्वरूप हूँ। अथवा मैं उन श्रीभगवानके ग्रंश हूँ, एतज्जन्य उनके अधीन एवं नित्यदास हूँ, इस प्रकार भावना करें ॥१६॥ पूर्वोक्त प्रकार से निज शरीर की शून्यचिन्ता द्वारा विद्वान् विशुद्ध बुद्धि साधक वाम नासापुट में षोड्शवार वायुवीज (यं) का जप करते करते वाम

तेन यत्नेन संशोध्य वामकुक्षिस्थितं पुनः । पुरुषं पापसंघातं श्यामं रक्तविलोचनं ॥ अङ्गुष्ठ कमितं दुष्टमधोमुखमतः परं । स्तम्भयित्वानिलं यत्नाच्चतुःषष्टिमितं जपन् ॥ जपन् द्वात्रिंशद्वारं तद्दक्षिणेन शनैस्त्यजेत् ॥२०॥ पुनर्दक्षिणया वायुमाकृष्य वह्तिमन्द्रतः । स्तम्भयित्वानिलं मन्त्रीयोगेन कुम्भकेन हि ॥ प्रज्ज्वाल्य वायुना वह्ति सन्दह्य पापदेहिनं । तद् भस्मसहितं वायुं वामया सन्त्यजेद् बहिः ॥ वामया वायुमाकृष्य जपन्न वेन्दुसंज्ञकं । वीजं मध्यमनाभ्याच ललाटेन्दौ नियोज्य च ॥

नासापुटके वायुद्वारा नाभिमण्डलस्थ वायुको वर्द्वित करे, तदनन्तर महाशोषण प्रवृद्ध वायुके द्वारा यत्नके सहित निज वामकुक्षिस्थित पाप सङ्घातमय घोर कृष्णवर्ग्य आरक्त नयन एकाङ्गु छ परिमित देह परमदुष्ट अधोमुख पाप पुरुषके साथ शरीर को शुष्क करें। अतःपर चतुषष्टिवार वायुवीज का जपकर रुद्ध वायुको द्वात्रिंशद्वार जपकर दक्षिण नासापुट द्वारा शनैः शनै त्याग करें ॥२०॥ पुनदच वस्त्रिवीज (रं) का जप करके दक्षिण नासापुट द्वारा वायु आकर्षण कर कुम्भक से अन्तरमें वायुका रोध करें। प्रशस्त मन्त्रसाधक उक्त वायुद्वारा वस्त्रि प्रज्वलितकर पापपुरुष को भस्म करे और भस्मके साथ वाम नासासे वायुत्याग करे। पश्चात् (ठं) चन्द्रवीज जपकर वायुके साथ उक्त वीजको ललाटस्थ चन्द्रमण्डलमें (वं) वरुणवीजके द्वारा कुम्भक कर अन्तरमें वायुको स्तम्भित करे। 'ठं' वीजमय चन्द्रमण्डल से मातृका वर्णात्मिका अमृतवृष्टि विधान पूर्वक उससे दग्धदेहको आप्लावित कर मातृकान्यास द्वारा मुखकर चरणादि

रूप समस्त शरीर को (लं) शकवीज द्वारा सुहढ़ करे। वायुका त्याग दक्षिण नासासे करे। वायुवीजके समान वह्निवीज का पोड़श चतुषष्टि द्वात्रिंशद्वार जपकर पूरक कुम्भक रेचक करे, और चन्द्र वीजका जप पोड़षवार जपसे पूरक, वरुण वीजके चतुषष्टिवार जपके द्वारा कुम्भक एवं शकवीज का द्वात्रिंशद् वार जपके द्वारा रेचक करे ॥२१॥ अनन्तर पूर्वस्थापित जीवादि तत्त्ववर्ग को 'हंस' मन्त्र द्वारा पुनर्वार निज निज स्थानमें संस्थापित करके प्राण-प्रतिष्ठा करे ॥२१॥ अनन्तर पूर्वस्थापित जीवादि तत्त्ववर्ग को 'हंस' मन्त्र द्वारा पुनर्वार निज निज स्थानमें संस्थापित करके प्राण-प्रतिष्ठा करे ॥२१॥ अनन्तर वक्ष्यगाए सर्वकमंके अङ्गभूत सर्वश्रेष्ठ प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्रको कहते हैं। प्रथम प्राणशक्तिका घ्यानकर हृदय में हस्त प्रदान पूर्वक उच्चारए करे। ओं औं ह्वी कौ यं रं लं वं श ष सं हं क्षं लं हौ ँ हं सः । सोऽहम् मम प्राणाः इति पुनर्वार उक्त वीज समूह का पाठकर 'मम सर्वेन्द्रियाणीह' इति कहे। पश्चात् उक्त वीज समूह का पाठकर 'मम वाङ्मन त्वक् चक्षु: श्रोत्र घाण

वारुणेनैव संस्तम्भच वायुं तच्चन्द्रमण्डलात् । विधायामृतवृष्टिश्च तयामृतीकृतं वपुः ॥ विचिन्त्य शक्तिवोजेन शरीरं सुदृढ़ं पुनः । भावयत् सन्त्यजेद्वायुं दक्षिणेनैव वर्त्मना ॥२१॥ पूर्वस्थापितजीवादीत् स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत् । हंस इत्येषमन्त्रेण जीवन्यासं ततश्चरेत् ॥२२॥ जीवन्यासमनुं वक्ष्ये सर्वकर्माङ्गमुत्तमम् । वेदादिविन्दुमाञ्शेषः शक्तिरङ्क्रुश एव च ॥ चादिलान्तं सेन्दुखण्डं हो हंसः सोऽहमेव च । मम प्राणा इह प्राणाः पुनः पूर्वमनुं पठत् ॥ मम जीव इहस्थितः पुनरेवंमनुं पठत् ।

चन्द्रिका

घ्राण प्राणा इहागत्य सुखेनैव चिरं पुनः । तिष्ठन्तु वह्निजाया च पूर्ववीजचतुष्टयम् ॥ जीवन्यासमनुःप्रोक्तस्तान्द्रिकैर्मन्त्रवित्तमैः ॥२३॥ इति भक्तिचन्द्रिकायां प्रथमः पटलः ॥

अथ द्वितीयः पटलः

1 月前日前日 ……— 8%米米。—…… 5月11日 月日

तती वै मातृकान्यासमाचरेत् साधकोत्तमः । ऋषिर्श्न ह्यास्य मन्त्रस्य गायत्रीच्छन्द उच्यते ॥ माता सरस्वती ध्येया देवता कथ्यते बुधैः । हलो वीजानि तत्त्वज्ञैः शक्तयो मन्त्रवित्तमैः ॥ स्वराश्चमातृकान्यासे विनियोगस्ततः क्रमात् । शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषुन्यस्य पश्चकम् ॥ ब्रह्यादिसेन्दुभिः षड्भाः स्वरयुग्मैः शिरोऽन्तगैः । कराङ्गन्यासं कुर्वीत ततो ध्यायेत् सरस्वतीं ॥१॥

प्राणा क्षं लं हौँ हंसः सोऽहं मम प्रागा इह प्राणा इति ''इहागत्य सुखेनैव चिरं पुनस्तिधन्तु स्वाहा ओं आँ ह्रीँ '' इति मन्त्रविद् गणोंके मध्यमें श्रेष्ठ तान्त्रिकगरा उक्त मन्त्रको ही प्रारा–प्रतिष्ठा मन्त्र कहते हैं।।२३।। इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां प्रथम पटलानुवादः ।।

साधक प्रवर भूतञुद्धचादिके परचात् मातृकान्यास करे। मातृकान्यास मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्नी, छन्द, ध्यानयोग्या मातृका सरस्वतीवेवता, हलवर्ण वीज,स्वरवर्ण शक्ति,मातृकान्यासे विनियोग, यह मन्त्रज्ञ तत्त्ववित् व्यक्तियों का मत है। अनन्तर शिर, वदन, हृदय, गुह्य, पाद, पश्च अङ्गमें उक्त ब्रह्मादि प्रश्व पदका न्यास करे,

\$85

पञ्चाशल्लिपिभि विभक्तमुखदोः पन्मध्यवक्षःस्थलां । भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीं ॥ मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्तम्बुजै विश्वाणां विषदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ॥२॥ इति ध्यात्वान्यसेद्देहे मातृकार्णान् विचक्षणः । शिरसि वदनवृत्तेचक्षुषोः कर्णयोश्च तदनु च नसि युग्मे गण्डयोरोष्ठदेशे । अधरदशनयुग्मे भालदेशे च वक्त्रे स्वरवसुयुगवर्णान् विग्यसेदिन्द्रयुक्तान् ॥ करपदयुगसन्धिष्वयतो कादिनान्तान् शशिकलितपवर्गान् पार्थ्वयोः पृष्ठनाभ्योः ।

परुचात् स्वानुस्वार षष्ठ स्वरद्वन्द्व ऋ लृ वर्ण वर्जित अकारादि विसर्गान्त द्वादश स्वरवर्णं आद्यन्तमें प्रयोगकर क्रमशः करन्यास अङ्गन्यास करे, अनन्तर मातृका सरस्वती का ध्यान करे ॥१॥

अकारादि पञ्चाशत् वर्णके द्वारा देवताके मुखमण्डल, वाहुयुगल, पादद्वय, मध्यदेश, वक्षः स्थल निम्मित है, जिनके दीप्तिमत शिरोदेशमें अर्द्धचन्द्रनिवद्ध है, स्तनद्वय अतिस्थूल एवं समुन्नत है, जिन्होंने करकमल चतुष्टय में मुद्रा; अक्षसूत्र, अमृतपूर्णं कलस, एवं धारण किये हैं, उन शुभ्रवर्णा त्निनयना वाग्देवता का आश्रय ग्रहण मैं करता हूँ ॥२॥ विचक्षण साधक उस प्रकार ध्यानकर निज शारीर में मातृकावर्णों का न्यास करें। किस वर्णका न्यास किस स्थानपर होगा, उसको कहते हैं। ललाट, मुखमण्डल, चक्षुर्द्वय, कर्णद्वय, नासिका पुटद्वय, गण्डद्वय, ओष्ठदेश, अधर, दन्त पङ्क्तिद्वय,उत्तमाङ्ग मुखचित्र है,इस षोड़श स्थानमें अकारादि विसर्गान्त षोड़श स्वरवर्ण एवं करद्वय की सन्धि अर्थात् वाहुमूल, कूर्पर (कनुइ) मणिबन्ध,

जठर इति हृदिस्थं यश्च रं दक्षिणांसे ककुदि लमितिचांसे वामभागे वमेव ॥ करद्वये पदद्वन्द्वे जठरे वक्तूके पुनः हृतपूर्वे विन्यसेच् शादिक्षान्तानिन्दुविभूषितान् ॥३॥ एवमुक्तेषु देशेषु सविसर्गान् स्वरान् हलः । विन्यसेत् पुनरेतेषु विन्दुसर्गयुतानपि विन्यस्यन् मातृकावर्णानेवं वर्णतनु भंवेत् ॥४॥ ततः श्रीवासुदेवादिन्यासं कुर्यात् सुसाधकः । अस्यैवन्यासराजस्य नारदो मुनिरेव च ॥ गायत्रीछन्द इत्येवं वासुदेवश्च देवता । वीजं प्रणव एव स्यात् स्वाहा शक्तिः प्रकीत्तिता ॥ अधिष्ठात्री देवता स्याद्देवी कात्यायनीसती ।

88

आचकायेति पश्चाङ्गं कुर्याद् ध्यायेत्ततः परम् ॥४॥

अङ्गुलिमूल, एवं पदद्वय की सन्धि अर्थात् ऊरुमूल जानु गुल्फ, अङ्गुलि मूलसमूह में यह षोड़श स्थान है, करद्वय पदद्वयके अग्रभाग चतुष्टय इस विंशति स्थानमें केकारादि नकारान्त विंशति संख्यक व्यञ्जनवर्ण, तत् पश्चात् वाम-दक्षिण पार्श्व द्वय, पृष्ठ, नाभि एवं उदर है। इस पञ्चस्थान में पवर्गके पाँचवर्ण, पश्चात् हृदय में यं, दक्षिण स्कन्धमें रं, ककुत् स्थानमें लं, बाम स्कन्धमें वं। अनन्तर हृदय से ग्रारम्भकर करतलद्वय, पदतलद्वय, जठर एवं आनन है, इस षट्अङ्गमें शकारादि क्षकारान्त षट्वर्णका न्यास करें यह ऊन– पञ्चाशत्वर्ण अनुस्वारयुक्त होकर न्यास कार्यमें प्रयुक्त होंगे ॥३-४॥

ग्रनन्तर महानुभाव साधक श्रीवासुदेवादिका न्यास करें, यह न्यास सवन्यास के राजा है, इस न्यास मन्त्रमें श्रीनारदमुनि,गायत्री छन्द:,श्रीवासुदेव देवता, ओंकार बीज, स्वाहा शक्ति, देवीकात्यायनी

ध्यायेदातप्तहेमद्युति रुचिरतमं पीतवस्त्रं प्रसन्नम् । श्रीवत्सोद्भासि वक्षःस्थलकलितलसत् कौस्तुभं दिव्यभूषम्।। हस्ताम्भोर्जर्दधानं दरकमलगदाचक्रमानन्दरूपं । लक्ष्म्या जुष्टं स्वगेशासनममरर्माणं वासुदेवं परेशम् ॥६॥ ध्यात्वैवं मातृकार्णानां मूर्त्तीः शक्तीश्च विन्यसेत् । मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि न्यासस्य क्रमयोगतः ॥ प्रणवो मातृकावर्णामूर्त्तिः शक्तिश्च ङेयुता । बह्नि जायान्वितो मन्त्रो वर्णस्थाने नियोजितः ॥७॥ लक्ष्म्यायुक्तो वासुदेवोऽनन्तः शक्तयान्वितः स्मृतः । हृषीकेशः श्रियायुक्तः प्रीत्यासङ्घर्षणस्तथा ॥ विष्ठणुः पद्मालयायुक्तो वकुण्ठो रमयासह ।

माधवः कमलायुक्तः कान्त्या कमललोचनः ॥

अधिष्ठात्नी देवता, भक्तिसाध्य में विनियोग है, करन्यास अङ्गन्यास सिद्धिके निमित्त "आचक्राय" इत्यादिरूप पञ्चाङ्गन्यास करे, तत् पश्चात् श्रीवासुदेव का ध्यान करें ॥ ्रा। जिनकी अङ्गकान्ति गलित स्वर्णके समान परम मनोहर है। जो पीताम्बर, प्रसन्न वदन, श्रीवत्समुद्भासि वक्षःस्थल में शोभमान कौस्तुभ रत्नधारी है, दिव्य अङ्गभूपा है, रम्यहस्तपङ्कणमें शङ्ख, पद्म, गदाचक्र धारण किए हैं, परमानन्द स्वरूप लक्ष्मी सेवित, गरुढ़ारूढ़ सर्वदेव शिरोमणि एव परमेश्वर श्रीवासुदेवका ध्यान करे ॥ इत्त विन्यास करें । न्यास हेत् मातृकावर्ण समूह की मूत्ति एवं शक्ति विन्यास करें । न्यास हेत् मन्त्र इस प्रकार है, प्रथम प्रणव, पश्चात् एक एक मातृकावर्ण, प्रनन्तर चतुर्थीके एकबचनान्त एक एक मूत्ति एवं शक्ति, पश्चात् स्वाहा शब्दका प्रयोग इस मन्त्रस्थान में करना होगा ॥ श्रीवत्सः कौस्तुभमणिः, रोमावली, भृगुपदचिह्न स्वर्ण्ररेखा लक्ष्मीः ॥

विश्वया विश्वनाथोऽपि शान्त्या विश्वेश्वरस्तथा । नारायणो विरक्तचा च नरो वुद्धचा समन्वितः ॥ केशवः कीत्तिसंयुक्तो देवकीनन्दन श्रुती । परेशः परयायुक्तः परमेष्ठी च शोभया ॥ शक्तयोमूर्त्तयः प्रोक्ताः स्वराणां क्रमयोगतः ॥ ८॥ अथ वक्ष्ये हलां मूर्तीः शक्तीश्च यत्नतः क्रमात् । दुर्गागदाधरौचक्रिजये शङ्खधरस्तथा ॥ विजयासहितो ज्ञेयः शर्ङ्गी च विरजान्वितः । हरिक्लिन्ने वसुमती सुरौ कृष्णवसुन्धरे ॥ गोविन्दवसुदे शौरिवसुधे मधुसूदनः । सन्ध्यायुती दयायुक्तो वामनः श्रीधरस्तथा ॥ हर्षया सहितो मेधा सहितश्च विविक्रमः। खड्गिप्रभे च मुषली चण्डया सहितोऽङ्क शी ॥ विलासिनी समायुक्तो वराह विग्रहस्तथा। धरणी सहितो रत्या प्रद्युम्नोभक्तिसंयुतः ॥

लक्ष्मी, शक्ति, श्री, प्रीति, पद्मालया, रमा, कमला, कान्ति, विश्वा, शान्ति, विरक्ति, वुद्धि, कीत्ति, श्रुति, परा, शोभा,स्वरवर्णकी षोड़श शक्ति, एवं वासुदेव अनन्त, हृषीकेश, सङ्कर्षण, विष्णु वैकुण्ठ, माधव, कमललोचन, विश्वनाथ, विश्वेश्वर, नारायण, नर, केशव, देवकीनन्दन, परेश, परमेष्ठी, यह षोड़शमूर्त्ति हैं ॥दा। अनन्तर व्यञ्जनवर्ग्य की शक्ति एवं मूर्त्तिका वर्णन करता हूँ। दुर्गा, जया, विजया, विलन्ना, वसुमती, वसुन्धरा, वसुदा, वसुधा, सन्ध्या, दया, हर्षा, मेधा, प्रभा, चण्डी, विलासिनी, धरगी, रति, भक्ति, ऊषा, उमा, कृपा, आकृष्टि, उग्रा, धृति, वाणी आद्या, मूर्त्ति, ऋदि, पुष्ठि,

सत्यश्चेदूषया सार्द्धमनिरुद्धस्ततः परः । यज्ञेशश्चोमया सार्द्धं श्रीरामः कृपयान्वितः ॥ आकृष्टचा सहितो ज्ञेयो जगन्नाथो भृगूद्रहः । उग्रया सहितः कूर्मरूपी घृत्या युतः पुनः ॥ वाणीयुतो हयग्रीव आद्यायुक्तो जनार्दनः । मूर्त्या वलानुजो वालऋद्धचा शुद्धचा गदाग्रजः ॥ दामोदरः पुष्टियुतस्तुष्टियक् कमलेक्षणः । यज्ञ आहुतिसंयुक्त स्तथोरुक्रम एव च ॥ श्रद्धायुक्तो नृसिंहश्च संहृत्या सहितस्तथा । याद्यं र्धातु प्राणजीवक्रोधा अप्यात्मने ऽन्तकाः ॥र्द॥ एवं कृतेऽधिकारीस्यात् भक्तिसाधनकर्मणि । तस्माद् यत्नेन कर्त्तव्यो न्यासोऽयं भक्तिसाधकः ॥१० इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां द्वितीयपटलः ॥

तुष्टि, आहुति, श्रद्धासंहुति, ये पञ्चत्रिभत् र्श्वात्त हैं, एवं गदाधर, चक्री, शङ्घधर भार्ङ्गी, हरि, सुर, इब्ब्ल, गोविन्द, भौरी, मधुसूदन, वामन, श्रीधर, त्रिविक्रम, खड़्गी, मुखली, अङ्कु्भी, वराह, प्रद्युम्न, सत्य, अनिरुद्ध, यज्ञेश, श्रीराम जगन्नाथ, भृगूढह, कूर्म, हयग्रीव, जनादन, वलानुज, वाल, गदाग्रज दामोदर, कमलेक्षण, यज्ञ, उरुक्रम, नृसिंह, ये पञ्चत्रिंभत् मूत्ति हैं, इसके साथ यदि दश वर्णके साथ त्वक्, रक्त, मांस मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, समधातु, प्राणजीव एवं क्रोध। इस दश शब्दका प्रयोग आत्मने शब्दान्तकर करे।।१।।

इस प्रकार अनुष्ठान करने से साधक भक्तचङ्ग पूजाविधि में अधिकारी होता है, तज्जन्य भक्तिसाधक को यह न्यास अनुष्ठान यत्नसे करना आवश्यक है ।।१०।।

इति भक्तिचन्द्रिकायां द्वितीयपटलानुवादः ॥

अथ तृतीयः पटलः

मन्त्रन्यासं प्रवक्ष्यामि यथास्थानं यथाक्रमम् । येन मन्त्रमयो देहस्तत्क्षणाद् भवति झुवस् ॥१॥ शिरोभालमुखे कण्ठे हृदये जठरे तथा । नाभौ ध्वजे जानुदेशे पादयोविन्यसेत् क्रमात् ॥ मन्तवर्णानिन्दुयुक्तान् साधकः सुसमाहितः । करयोरङ्गु लोष्वेव मन्त्रार्णान् विन्यसेत् सुधीः ॥२॥ ततः ऋष्यादिकं कुर्याद् यथाक्रममनन्यधीः । मन्तस्यास्य ऋषिः प्रोक्तो नारदक्ष्ठन्द ईरितम् ॥ गायत्री देवता कृष्णचैतन्यो रसविग्रहः । वोजन्तु कामप्रेमाख्यं स्वाहा शक्तिः प्रकीत्तिता ॥

अनन्तर स्थान एवं क्रमके अनुसार मूलमन्त्र सम्बन्धि न्यासविधि का वर्णन करूँगा। जिससे साधक देह तत्क्षणात् मन्त्रमय अर्थात् श्वीभगवद् पूजाका अधिष्ठान स्वरूप होता है। यह निश्चय है। कमभेद एवं विधिभेद अनेक प्रकार है। अतः सम्प्रदायके अनुरूप ही न्यासादि करना उचित है। भक्ति विरोधि अनुष्ठान सम्प्रदाय विहित नहीं है।।१॥ अनन्तर स्थान एवं क्रमानुसार न्यासविधि कहता हूँ। साधक एकाग्र चित्तसे मस्तक, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, उदर, नाभि, लिङ्ग, जानुद्वय-पदद्वय, ये दश्वस्थान में दश मन्त्राक्षरका न्यास सानुस्वार प्रणवादि नमोऽन्तकर यथाक्रमसे करे। अनन्तर विद्वान साधक करद्वयके तलपृष्ठ एवं पार्श्व में समग्रमन्त्र एवं अङ्गुली दशमें मन्त्रका एक एक प्रक्षर का न्यास पूर्वोक्त प्रकार से करे॥२॥ तदनन्तर साधक एकाग्रचित्तसे प्रयुक्त दशाक्षर महामन्त्रके श्रह्यादि का स्मरण करे। उक्त मन्त्रके श्रीनारदऋषि गायत्रीछन्दः,

आद्याशक्तिरधिष्ठाती देवता मन्त्रवित्तमैः । शिरोवदनहृद्देशे ध्वजे पादे च सर्वतः ॥ गात्रेषु विन्यसेत् साध्ये विनियोगः क्रमादिति । पदानि पञ्चमन्त्राङ्गकलप्यान्यथ मनुं न्यसेत् ॥३॥ मन्तार्णैः कल्पयेदङ्गं क्रमयोगेन साधकः । कामेन कल्पयेदङ्गं हृदयाय नमः परम् ॥ प्रेम्ना च शिरसे स्वाहा शिखायं वषडि्त्यपि । कृष्णेति कवचात् ङे हुं चैतन्यायेत्यतः परम् ॥ नेत्रत्नयाय वौषट् स्यात् स्वाहास्त्राय फडि्त्यपि । सर्वेमंन्त्राक्षरेरेव मङ्गन्यासौ विधीयते ॥ एवमेव प्रकुर्वीत करन्यासं समाहितम् ॥४॥ ततो वर्ण्यन विधिना स्वदेहे पीठमर्च्च येत् । उपर्य्युपरि सश्चित्यं हृदि सङ्कल्पच तारवत् ॥

रसविग्रह श्रीकृष्णचैतन्य देवता, कामप्रेमाख्य वीज, स्वाहा शक्ति, आद्याशक्ति, अधिष्ठात्री देवता साध्यमें विनियोग। इसका वर्णन मन्त्रविद् तान्त्रिक जनोंने किया है। उक्त ऋष्यादि सप्तभागके मध्य में प्रथम पाँच अंश मस्तक, ललाट, हृदय, लिङ्ग पदमें एवं षष्ठांश का न्यास समस्त शरीर में करे। पश्चात् मन्त्रमें अङ्ग रूपमें कल्पनीय पाँच पदको यथाक्रमसे उक्त पश्चस्थानमें एवं समग्र मन्त्रको सर्वाङ्गमें न्यास करें ॥३॥ साधक मन्त्रके प्रतिपद में एक एक अङ्गकी कल्पनी करे। उसके मध्यमें कामवीज से हृदयाय नमः, प्रेमवीज से शिरसे स्वाहा, कृष्ण पदसे शिखाये वषट, चैतन्याय पदसे कवचाय हूँ, स्वाहा पदसे नेत्रत्रयाय वैषट्, एवं सम्पूर्ण मन्त्रसे सस्त्राय फट् कह कर मन्त्रका षड़ङ्ग न्यास भी एवं समाहित चित्तसे पूर्वोक्त प्रकारसे कराङ्ग्ली में न्यासभी करे ॥४॥ तदनन्तर वर्णनीय प्रकारके

आधारशक्तये मूलप्रकृत्यै कूर्म आययुक् । अनन्ताय प्रथिव्यैच ततः क्षीराब्धये नमः ॥ श्वेतद्वीपाय तत्रैव रत्नमण्डप आययुक् । दक्षवामांसयोरूर्वोधर्मं ज्ञानं प्रयूजयेत् ॥ वैराग्यश्च तथैश्वर्यं चतुर्थ्यन्तं ततः परम् । मुखे ध्वजे पार्श्व योश्राधर्ममज्ञानमेव च ॥ अवैराग्यमनैश्वय्यं पूजयेन्मण्डपान्तरे । दिक्षु मध्ये कल्पवृक्षं तदधोरत्नवेदिकां ॥ रत्नसिंहासनं तस्मिन्नानन्दकन्दमेव च । सम्विन्नालञ्च कमलं कणिका केशरान्वितम् ॥ शेषं ततः कणिकायां सूर्य्येन्द्रनलमण्डलं । प्रणवाङ्गः समायुक्तं स्वकलासहितं ततः ॥ सत्वं रजस्तम सेन्दु स्वाद्यक्षरयुतं तथा। अत्मानमन्तः परमपूर्वकञ्च सशक्तिकः ।। ज्ञानात्मेति ततः शक्तीः पीठस्य षोड्शैकतः ॥४॥

अनुसार साधक निज शरीर में उपय्युं परि भावसे चिन्तनीय आधार शक्तयादि योगपीठ कल्पना हृदयमें करके यथाक्रमसे प्रणव पूर्वकपूजा करें। आधार शक्ति, मूल प्रकृति, क्रर्म, अनन्त. पृथिवी, क्षीराब्धि, श्वेतद्वीप, तदुपरि रत्नमण्डप, इस सवमें चतुर्थी विभक्ति नम: शब्द देकर प्रयोग करें, तत्पश्चात् निज दक्षिण वामस्कन्ध में चतुर्थी विभक्ति योगकर धर्मज्ञान एवं वाम दक्षिण उरुद्वय में वैराग्य ऐश्वर्य्य शब्द, मुख, वामपाश्च ध्वज, दक्षिणपार्श्व स्थान चतुष्टयमें अधर्म अज्ञान, अवैराग्य अनैश्वर्य्य शब्द्र चतुष्टय की ओं नमः शब्द ग्राद्यन्तमें देकर पूजा करें। पश्चात् पूर्वनिदिष्ट रत्नमण्डपके अभ्यन्तर में

लक्ष्मी वंसुमती भद्रा विमला कमलामला । अरुन्धती च गान्धारी क्षमा शान्ति ईरिप्रिया ॥ रतिः कान्तिर्घु तिः सत्या सुभद्रा मध्यभागतः । विष्णुप्रियाच विज्ञेया एता वै पीठशक्तयः ॥६॥ वेदादिहृदयं प्रोक्तं भगवान् वासुदेवकः । विष्णुङेंयुक् ततो ब्रूयात् सर्वभूतात्मने ततः ॥ 28

चतुर्दिक्के केन्द्रस्थलमें कल्पवृक्ष, कल्पवृक्षके अधोभाग में रत्नवेदी, रत्नवेदीके उपरिभागमें रत्नसिंहासन, उसके उपर आनन्द कन्द सम्विन्नाल, करणिका केशार विशिष्ट कमलके पदचात् अनन्त पद्म की पूजा करें। अनन्तर उक्त पद्मकणिका में प्रणवाङ्ग अर्थात् अकार उकार मकार को अनुस्वार युक्त करके आद्यन्त में ओंकार देकर, स्व स्व कलायुक्त सूर्य्य, इन्दु, अग्नि मण्डलकी पूजा करें। तत् पश्चात् सान्स्वार स्व स्व आदिवर्णं जोड्कर सत्त्व, रजः, तमः, आत्मा, अन्तरात्मा, एवं हीं वीज प्रदान पूर्वक ज्ञानात्मा की पूजा करें, केशरके मध्यमें षोड़श, एक मुख्यशक्ति, की पूजा करें ग्रथति सप्तदश पीठशक्ति को पूजा करें ॥ १॥ लक्ष्मी, वसुमती, भद्रा, विमला, कमला, अमला, अरुन्धती, गान्धारी क्षमा, शान्ति, हरिप्रिया, रति, कान्ति, धृति, सत्या, सुभद्रा, यह षोड्श शक्ति एवं मध्यस्थलमें विष्णुप्रिया, ये सप्तदश पीठशक्ति रूपमें प्रसिद्धा है।।६॥ प्रथमतः प्रणव नमः शब्द उक्त है, तदनन्तर भगवान्, वासुदेव, विष्णु, शब्द त्रयको चतुर्थी विभक्तिके एकवचन युक्तकरे । पश्चात् सर्वभूतात्मने, सर्वात्म संयोग योगपद्म पीठात्मने नमः, प्रयोग करें। पाठकम से अर्थक्रम वलवान् है इस नियम से सर्वभूतात्मने पदके पश्चात् चतुर्थ्यन्त वासुदेव पदका प्रयोग करे। सुतरां उक्त मन्त्रका पाठकम इस प्रकार होगा। "ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः" इति । इस पीठ

सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः । इत्येवं पीठमभ्यच्यं कृत्वा दिग्बन्धनं पुनः ॥ स्वाङ्को न्यस्योत्तानकरौ ध्यायेच्छ्री पुरुषोत्तमं ॥७॥ स्वर्धुनीतीरमासाद्य नवद्वीपे जनालये । बाह्मणैः पण्डितैर्भट्टै राचायँश्चक्रवर्त्तिभिः ॥ कबिभिः कविराजेश्च काव्यविद्र्भिविचक्षणैः । वैद्यैवैँद्यकशास्त्रज्ञै ज्योंतिर्विद्भिः समन्विते ॥ दातृभि र्ज्ञानिभि र्धन्यैर्वेदविद्भिश्च वैष्णवैः । वर्त्वारैः सितैरक्तैः शतपत्रैश्चतुर्विधैः ॥ निषेविते पुनस्तत्र कदम्बतरुमूलतः । दिव्यं मनोहरं स्थानंगन्धवायुनिषेवितम् ॥ वेष्ठितं भक्तवय्यँश्च तत्तद्भावसमन्वितैः । करस्थमाल्ययुग्मैश्च जयगौरेति वादिभिः ॥

22

मन्त्रका न्यास सर्वशेषमें पीठके उपर करें। इस प्रकार पीठार्चन के पश्चात् पुनर्वार ''ओं नमः सुदर्शनायास्त्राय फट्'' मन्त्रसे दिग्बन्धन करें, पश्चात् करद्वय को निज क्रोड़देश में उत्तमरूप से स्थापन करें, लीलापुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दनका ध्यान करे।।७।। अनन्तर मन्दाकिनी तीरस्थित श्रीनवद्वीपाख्य भागवतजन वृत्दके आवासभूत परम वैष्णव क्षेत्रमें भट्ट, आचार्य, चक्रवर्त्ती प्रभृति विविध उपाधिधारी बाह्यण पण्डित मण्डली, कवि उत्तम कवि, काव्य कलाके विचारक विद्वद्वृन्द, वैद्यक शास्त्राभिज्ञ चिकित्सक, ज्योतिर्विदगण, दाता ज्ञानी धन्य, वेदविद् वैष्णव समूह निवास करते हैं। सितरक्त करवीर कुसुम, पुण्डरीक भेदसे चतुर्विध शतदल कमल निषेवित श्रीनवद्वीप में कदम्ब तष्के मूलदेशमें एक अलौकिक सर्वविध शोभा विश्विष्ठ परम मनोहर गन्धवायु सेवित दिव्य रत्नादिमय स्थान की

क्रमात् सप्तावृतियुतैदिव्यवेशविभूषणैः । तन्मध्ये वर्त्तते दिव्यंचतुरस्र सुखासनम् ॥ भक्तिभावसमायुक्तस्तत्रासीनं विचिन्तयेत् । ध्यायेदातप्तजाम्बुनदरुचिरुचिरं शुक्लरक्तान्तचीरं ॥ दिव्यारक्तासनस्थं स्मितर्वालतमुखाम्भोजरक्तद्विनेत्रम् । विव्यारक्तासनस्थं स्मितर्वालतमुखाम्भोजरक्तद्विनेत्रम् । श्रीखण्डालिप्तवक्षःस्थलकलितलसन्मालतीमाल्ययुग्मं ॥ चैतन्यं दिव्यभूषं द्विजमुकुटर्माणं भक्तमालाभिषिक्तम्॥ ॥ एवं ध्यात्वाचिते पीठे हृदयाम्भोजमध्यतः । उपवेश्य स्वागतादिप्रश्नं कृत्वा सुसाधकः ॥ मनसा मूलमन्त्रेण दद्यादर्ध्यंश्व मस्तके । पाद्यमाचमनीयश्च मधुपर्कं ततः परम् ॥

चिन्ता करें। वह श्रीवासादि भक्तश्रेष्ठ समूह द्वारा परिबेष्टित है, जो निज निज भावसमन्वित होकर करयुगल में पुष्पमाल्य युगल धारण कर मुखसे ''जय गौराङ्ग'' शब्द उच्चारण करते हैं एवं यथाक्रमसे सप्तावरण मध्यस्थित होकर दिव्यवेश भूषण से विभूषित हैं। अनन्तर उस स्थानके मध्यस्थलमें चतुष्कोण परमसुखकर आसन है, उस आसन में उपविष्ठ श्रीभगवान की चिन्ता करे। भक्ति समन्वित साधक पश्चात् प्रतप्त कनक कान्तिके समान परम मनोहर, शुक्ल अथच रक्तवात् दुकूलधारी, दिव्य आरक्त आसनस्थित, स्मित शोभित वदनकमल, रत्न रेखान्वित नेत्रयुगल, चन्दनालिप्त वक्षःस्थल में मालतीपुष्प निर्मित माल्ययुगल धारी, भक्तवृत्दके द्वारा कृत महाभिषेक, दिव्यालङ्कार मण्डित द्विजमुकुटमणि श्रीचैतन्यदेवका ध्यान करे॥दा। ध्यानके अनन्तर निज हृदय पद्यके मध्यस्थलमें उपवेशन कराकर मस्तकमें गुरुभ्यो नमः, मूलाधार में ''गँ गरोशाय नमः'' मन्त्रसे क्रमशः गुरु एवं गणपति की पूजा करें। साधक

पुनराचमनीयञ्च स्नानीयं दिव्यवाससी । दद्यादाचमनीयञ्च पुनरेव क्रमाद्रुधः ॥ दिव्यञ्चभूषणं दिव्यकर्पूरान्वित चन्दनं । गन्धञ्च धरणीतत्त्वं पुष्पमाकाशतत्त्वकं ॥ वायुतत्त्वं तथा धूपं ज्योतिस्तत्त्वञ्च दीपकम् । नैवेद्यं रसतत्त्वञ्च सर्वसम्पन्नमुत्तमं ॥ पुनराचमनीयञ्च ताम्बूलं मुखवासकम् ॥र्६॥ गीतवादित्र नृत्यैश्च सन्तोष्य च जनार्दनम् । यथाशक्ति मनुं जप्त्वा देवहस्ते जलार्पणम् ॥ गुह्यातिगुह्यगोक्षा त्वं गृहाणेत्यादिना पुनः । जपं समर्प्य मन्त्रेण कुर्यादात्मसमर्पणम् ॥१०॥

28

स्वागतादि प्रइनकर श्रीभगवानूके मस्तक में मूलमन्त द्वारा मानसिक अर्घ्य दान करे। पादद्वयमें पाद्य, मुखमें आचमनीय, मधुपकं पुनराचमनीय तीनवार देकर अनन्तर स्नानीय दिव्यवस्त्र युगल पुनराचमनीय दिव्य आभरण, कर्पूरान्वित चन्दनात्मक अनुलेपन पूर्वक धरणीतत्त्व स्वरूप गन्ध, आकाश तत्त्वरूप पुष्प, वायुतत्त्व स्वरूप धूप,ज्योतिस्तत्त्व स्वरूप दीप,रसतत्त्वरूप नैवेद्य,पुनराचमनीय मुखवासक ताम्बूल प्रदान विज्ञसाधक यथाक्रमसे करें। यह षोड़श उपचार सर्वाङ्ग सम्पन्न होनेसे सर्वोत्तम होता है॥ शा अनन्तर गीतवाद्य नृत्यके द्वारा निज देहके मध्यमें श्रीभगवान् को तृप्त करनेके लिए यथाशक्ति अष्टोत्तरश्वत, सहस्रवार मूलमन्त्र जपकर देवताके हस्तमें जलार्प्रण करे। पश्चात्—

गुह्याति गुह्य गोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपं,

सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत् प्रसादात्वयि स्थिते ॥ मन्त्रके द्वारा जप समर्पण के अनन्तर वक्ष्यमाण मन्त्र द्वारा आत्मसमर्पण करे ॥१०

इतः पूर्वं प्राणवुद्धिदेहधर्माधिकारतः । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तचाद्यास्ववस्थासु ततः परम् ॥ मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां च ततः परम् । पद्भ्रचामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यत्त्र्थैव च ॥ उक्तं यत् कृतमित्येव तत्सर्वं पुनरेव च । ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयञ्च तत् पुनः ॥ सकलं हरये सम्यगर्पये ओं तत्सदिति ॥१९॥ एवं चुलुकोदकेनैव कुर्य्यादात्मसमर्पणम् । भगवच्चरणाम्भोजे भावयेत् तन्मयात्मताम् ॥ ततो भगवतो वाह्य पूजार्थमर्घ्यंकल्पनम् ॥१२॥ इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां तृतीयः पटलः ॥

पूर्वजन्मसे प्राण वुद्धि देह धर्ममें अधिकार हेतु मैंने जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति ग्रवस्था में मनसे जो कुछ किया है, वाकच से जो कहा है, हस्तद्वय, पदद्वय, उदर, शिश्नसाध्य कायिक प्रयत्नसे जो कुछ किया है, तत समुदय ब्रह्म अर्थात् श्रीचैतन्य देवमें अपित होवे, मैं ग्रपने को एवं मेरे सम्बन्धीय समस्त वस्तुका अपर्णा श्रीहरि को कर रहा हूँ। ओं तत् सत् श्रीभगवान्के नामलय का उच्चारण मेंने किया है, कर्म वैगुण्य इससे बिनष्ट होजाय ॥११॥ पूर्वोक्त मन्त्रक्रमानुसार गण्डूष माल जल ग्रहण कर श्रीभगवत् चरण पद्मके समोप में अर्पण कर कर्मार्पण करे। एवं अपने को दास मानकर आत्म समर्पण करे। अनन्तर वाह्य पूजा हेतु अर्घ्य स्थापन करें ॥१२॥

**-

इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां तृतीयपटलानुवादः ॥

अथ चतुर्थः पटलः

25

--:***:-

अथ भक्तिमतीं दीक्षां मन्त्रसिद्धचर्थ हेतवे । वक्ष्ये शिष्येष्टसिद्धचर्थं भगवत्प्रीतिकारिणीम् ॥ यामृते मन्त्रसिद्धिनं भवेत् कोटिजपादिभिः । कल्पे दृष्ट्वा न कदापि जपेन्मन्त्रं विचक्षणः ॥१॥ यथास्वं दक्षिणावस्तु नेह ब्रह्माण्डगोचरे । तत्रैवं दक्षिणा देहसमर्पणविधि विधिः ॥२॥ ततः प्रथमतः शिष्यगुरुलक्षणमुच्यते ॥३॥ भक्तं भक्तिविधानतत्त्वकथने निष्णातमेवान्वहं । ब्रह्माख्यानपरायणं भगवतस्तत्त्वैकनिष्ठापनम् ॥

मन्त्र सिद्धिरूप परमार्थ सिद्धि हेतुक भक्तिक्रियामयी, अतएव भगवत् सन्तोष कारिणी है, जिसके विना कोटि सङ्ख्यक जपादि हारा भी मन्त्रसिद्धि नहीं होती है, उस दीक्षाविधि गुहीत होनेपर शिष्यवर्ग का भगवत् पूजाधिकार होता है, विचक्षण व्यक्ति कभीभी पुस्तक में देखकर मन्त्रजप न करे, उससे निष्फल होगा। सुतरा गुरुदेव से दीक्षा ग्रहण करना कत्त्तंच्य है। इस ब्रह्माण्ड में यथायोग्य दक्षिणा वस्तु नहीं है, श्रीगुरुदेव को यथायोग्य दक्षिणा प्रदान करना कत्तंच्य है, अन्यथा मन्त्र की सञ्चारिणी शक्ति कुण्ठिता होती है, सुतरां मन्बदीक्षा कर्मके आद्यन्त में दक्षिणा देना आवश्यक है, अर्थात् सर्वस्वके सहित देह समर्पण, आत्मनिवेदन करना एकान्त विधेय है, किम्बा दक्षिणा रूपमें आत्मनिवेदन करना ही विधि है। ॥१-२॥ सम्प्रति दीक्षाविधि कथनके पूर्वमें शिष्यके साथ गुरुलक्षण कथित होता है ॥३॥ वैष्णव प्रवर, भक्ति सम्बन्ध विधान, तत्त्व प्रतिपादन करने में परम कुशल, नियतकाल शब्द ब्रह्मस्वरूप वेद

शान्तं दान्तमनन्यसाधनपरं सद्वासनासंयुतं ।

भक्तचा श्रीगुरुमाश्रयेदनुगतोऽमायी सुशान्तोऽनिशम् ॥४॥ प्रपद्यमानो गुरुमाह वाकचं प्रणम्य भक्तचा निजकर्मदर्शी । अहं सदा दुःसहदुःखभागी दयां कुरुष्वेति दयानिधे मे ॥ संसारमग्नं प्रणतं दयाम्बुधे त्रायस्व मां नित्यमनन्यदर्शिनं । स्वाभीष्टसेवाविधिमेव देहि मे शिष्यं प्रपन्नं कुरुशासनं हितम्॥

मासर्क्षतिथिवारे च शुभे लग्ने समाहितः । देशिकः संयमी दीक्षाविधिमारभते स्वयम् ॥६॥ वृतः शिष्येण वासोभिर्भूषणैः पुष्पचन्दनैः । एतैरलङ्कृतोधीरोभूमि संशोध्य यत्नवान् ॥ ततासनं पातयित्वाचैलाजिनकुशोत्तरं । तदेव शोधयेन्यन्त्रैर्मन्त्री वढाञ्चलिः शुचिः ॥

शास्त्र परायण, श्रीभगवानूके एकमात्र संस्थापक, संयतचित्त, जितेन्द्रिय भक्ति मात्र साधनपर, भक्ति सद्वासना समन्वित, श्रीगुरुदेव की शरण में शिष्यकी एकान्त आना आवश्यक है ॥४॥ निजकर्मफल दर्शनार्थ श्रीगुरुचरण में शरणागत जन भक्तिके साथ प्रणाम कर इस प्रकार प्रार्थना करे, हे करुणासागर ! मैं देहाभिमानी जीव हूँ, अत: सर्वदा असद्य यातना भागी हूँ। मुफ्ते करुणा करें, मैं संसारसमुद्रमें निमग्न हूँ, मैं आपका एकान्त भक्त हूँ, एवं आपका दर्शन भगवत् स्वरूप मं कररहा हूं। मुफ्ते उद्धार करें, निज अभीष्ट देवता की सेवाविधि की शिक्षा दान करें, शिष्टयरूपमें प्रपन्न मुफ्ते तादृश उपदेश प्रदान करें, यही मेरी प्रार्थना ॥४॥ गुरु एकाग्रचित्त, संयमी होकर सत्फलप्रद मास, नक्षत्र, तिथि, वार एवं लग्नमें स्वयं दीक्षाविधि का आरम्भ करें ॥६॥ विवेकी गुरु वस्त्रालङ्कार पुष्प चन्दनसे शिष्य द्वारा शोभित एवं वृत होकर दीक्षोपयोगी सामग्री समूह का

मेरुपृष्ठादिभिश्चात मन्तिते स्वस्तिकासनम् । वढोपविश्य प्राचीदिग्वदनः सोर्ढ पुण्ड्रकः ॥ संमन्त्र्य गन्धपुष्पादीन् करौ ताभ्यां च शोधयेत् । प्रणम्य वामभागे च गुरुपङ्क्तीर्गणाधिषम् ॥ दक्षेऽग्रतो भगवतीं क्षेत्रपालञ्च पश्चिमे । निर्विघ्नो विधिवत् कृत्वा तालदिग्वन्धनादिकम् ॥ भूतशुढिक्रमेणैव देहशोधनमाचरन् । संस्थाप्य देहे जीवादीन् कृतन्यासविधिक्रमात् ॥ स्वदेहे पीठमभ्यर्च्य ध्यानादेव महाप्रभुं । तत्र संस्थाप्य मूलेन संपूज्य मनसाक्रमात् ॥ तस्याहं तन्मयो भूत्वा वहिः पूजां समाचरन् । अर्घ्यसंस्थापनं कुर्याद् यथाक्रममतन्द्रितः ॥७॥

स्थापन यथास्थानमें करके दीक्षास्थल का शोधन उत्तम रूपसे करें। उस संस्कृत भूमिमें प्रथम कुशासन, मृदुचर्मासन, मृदुवस्त्रासन कमश स्थापन कर निज आसन निर्माण करे और प्रणवादि नमोऽन्त आधार शक्तचादि मन्त्र प्रयोगके द्वारा उसे शुद्ध करे। अनन्तर वद्धाञ्जलि स्नानाचमनादि द्वारा शुचि होकर मेरुपृष्ठादि आसन मन्त्र द्वारा शोधित आसनमें स्वस्तिकासन बन्धन पूर्वक पूर्वास्य कृततिलक होकर उपवेशन करे। परचात् गन्धपुष्पादि को यथा स्थानमें रखकर मन्त्रपूत गन्धपुष्प द्वारा निज करद्वय का शोधन करें। अनन्तर वामभाग में गुरुपरम्परा, दक्षिण में गणदेव, अग्रमें भगवती, परचात् में क्षेत्रपाल को प्रणाम कर विघ्नापसारण करें। यथाविधि तालत्रय दान, दिग्बन्धन, भूतशुद्धि कमसे देहशुद्धि कर देहमध्यमें पूनर्वार जीवादि को स्थापन कर ऋष्यादि क्रमसे मातृका न्यास करे। अनन्तर निजदेह में पीठपूजाके वाद ध्यान कमसे

श्रीमन्महाप्रभु को उक्त पीठमें मूलमन्त्रके द्वारा प्रतिष्ठित कर मानसोपचार से पूजा करें। पश्चात् मैं श्रीमन्महाप्रभु का नित्यदास हूं, इस भावसे आविष्ट होकर वाह्यपूजा हेतु ग्रालस्य वर्जित होकर अर्घ्य पात्रका स्थापन करें ॥७॥ विद्वान् व्यक्ति निज वामपार्श्व के अग्रभागमें त्रिकोरा षट्कोण चतुष्कोण युक्त उत्तम मण्डलत्रय का निर्माण सिकतादि द्वारा करे ॥६॥ 'कट' अस्त्रमन्त्र द्वारा शङ्खाधार प्रक्षालित कर प्रायुक्त ''ओं आधार शक्तयेनमः'' मन्त्रसे स्थापन करें, वह्तिमण्डलरूप त्रिपदी को ''मं वह्ति मण्डलायदशकलात्मने नमः'' कहकर भक्ति भावसे गन्धादि द्वारा पूजा करे ॥६॥ अनन्तर प्रशस्त वुद्धि साधक अस्त्र मन्त्रसे शङ्ख प्रक्षालित कर त्रिपदीके उपर स्थापन करें, सूर्य्य स्वरूपमें भावित शङ्ख को ''भं सूर्य्यमण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः'' मन्त्रसे पूजा करें। ''हृदयाय नमः' मन्त्रसे गन्ध, पूष्प, यव, दूर्वासे शङ्खको पूर्णकरे। किज दक्षिण भागमें स्थित

तिषट् चतुष्कोणयुतं मण्डलत्रयमुत्तमम् । उपर्य्युपरिभागेन भुवि वामे लिखेत् सुधोः ॥ ॥ प्रक्षाल्य त्रिपदीमस्त्रमनुना तत्र मण्डले । संस्थाप्य पूजयेद्भक्तचा गन्धाद्यैः सुसमाहितः ॥ वह्तिमण्डलरूपां तां वह्तिमण्डलमन्त्रतः ॥र्ध्र ततोऽस्त्रमनुना शङ्खं प्रक्षाल्य स्थापयेत्ततः । पूजयेत् सूर्य्यरूपं तं सूर्य्यमण्डलमन्त्रतः ॥ गन्धं पृष्पं यवं दूर्वां हृदा शङ्खे च निक्षिपेत् । दक्षिणस्थ जले धोमान्–विलीमेनेव मातृकाः ॥ तेजः स्वरूपाविज्ञाय–प्रजपन्निन्दुनिःसृताः । तद् युक्तामृतवुद्धचाब्जं शिरसा पूरयेज्जलैः ॥ तद् भागं सोमवुद्धचा च सोममण्डलमन्त्रतः ।

चन्द्रिका

संपूज्य तत्र तीर्थानि स्थापयेत् सूर्यमण्डलात् ॥ तन्मन्त्रेण समानीय हृत् पद्माच्च महाप्रभुम् ॥१०॥ प्रदर्श्य गालिनीं मुद्रां शिखया नेत्नमन्ततः । स्वयं वीक्ष्य वर्मणा च जलं तदवगुण्ठयेत् । अथगुण्ठनमुद्राभिः पुनस्तस्याग्निकोणतः । हृदयापि कवचान्तं नेत्रमग्रे च विन्यसेत् ॥ दिक्ष्वस्त्रमङ्गमन्त्रैस्तु पूजयेत्तज्जलं क्रमात् । अमृतीकरणं धेनुमुद्रया शङ्खमुद्रिकां ॥ प्रदर्श्याच्छाद्य यत्नेन तज्जलं मत्स्यमुद्रया । प्रजपन्नष्टधा मूलमन्त्रमैक्यञ्च भावयेत् ॥

जलमें मातृका वर्णको चन्द्रज्योतिरूप मानकर व्युत्क्रमसे मातृका न्यास करे । मातृकावर्ण मिश्रित जलके द्वारा 'शिरसे स्वाहा' कह कर शङ्खको पूर्ण करें । तत् पश्चात् चन्द्रज्ञाने में उँ सोम मण्डलाय षोड़श कलात्मने नमः'' मन्त्र से जलभाग की पूजाकर, 'गङ्गे च' मन्त्रसे सूर्यमण्डल से तीर्थों का आवाहण अङ्क श मुद्रासे करे एवं निज हृदय स्थित श्रीमन्महाप्रभु को उक्त जलमें प्रतिष्टित करें ।।१०।। पश्चात् शिखामन्त्र-शिखाये वषट् मन्त्र द्वारा गालिनी मुद्रा दिखाकर 'नेलाम्यां वौषट्' नेत्रमन्त्र द्वारा स्वयं देखकर कवचाय हूं, कवचमन्त्र से अवगुण्ठन मुद्राको दिखाकर जलको हस्तद्वारा आच्छादन करे । पुनश्च अग्नि कोणसे आरम्भ कर कोण चतुष्टय में हृदयादि कवचान्त मन्त्रचतुष्टय का, अग्रभाग में नेत्रमन्त्र का, पूर्वादि दिक् चतुष्टयमें ग्रस्त्रमन्त्र का वित्यास करे । अङ्गमन्त्र द्वारा जलकी पूजा करे । कमशः अस्त्रमन्त्र से दिग्वन्धन, धेनुमुद्रासे ग्रमृतीकरण, शङ्क्षमुद्वा प्रदर्शन, एवं मत्स्यमुद्वा द्वारा जलका आच्छादन करे । आठवार मूलमन्त्र का जप करे । जल, शङ्क्ष, इष्ठ देवता का अभेद चिन्ता

जलाब्जदेवतानाञ्च प्रसन्नात्मा ततः परम् ।

शङ्खस्थजलविन्दुख दक्षिणस्थजले क्षिपेत् ॥ तच्छेषेणोक्षयेत् पूजाद्रब्यमात्मानमेव च । वारत्रयम् ॥११॥ ततो मन्त्रो घटं मण्डलमध्यतः गुरुविघ्नेशपीठाच्चान्विते शालिकुशोपरि । संवेष्ट्रच क्षौमयुग्मेन सतारं विधिवन्नचसेत् ॥१२॥ पञ्चरत्नं पञ्चगव्यं पञ्चामृतमतः परम् । कुशकूच्चांस्तथाश्वेत प्रसूनाक्षत पल्लवान् ॥ प्रत्येकमेवमन्त्रेण मूलेन निक्षिपेद्घटे ।

कर्पूरवासितं नीरं मातृकामयमुत्तमम् ॥ सुधास्वरूपकं स्वच्छं त्रिश्च जप्तं स्वमन्त्रतः । क्षीरद्रुमादिक्वाथम्बा ॥१३॥

नीत्वा शङ्खान्तरं पुनः । तेन सम्पूर्य्य मूलेन त्रिपदां तत्र संजपेत् ॥

करे। शङ्खस्थ जल दक्षिण पार्श्व स्थित पात्रमें किञ्चित निःक्षेप करे, अवशिष्ठ जल पूजाकी सामग्री में निज शरीर में मूलमन्त्रसे प्रोक्षण करें ।।११।। तदनन्तर यन्त्रविद् व्यक्ति गुरुवर्ग गणदेव, पीठपूजान्वित सर्वतो भद्रादि का स्थापन दीक्षमण्डलके मध्यभागमें करे, इसके पहले उसमें शालिधान्य तण्डुल कुशमुष्टि स्थापन करे, उसके उपर क्षौम वस्त्र परिवेष्टित हेमादि निर्मित कलसका स्थापन प्रणवसे अभिमन्त्रित करके करें ।।१२।। कुम्भस्थापन के वाद पञ्चरत्न, पञ्चगव्य, पञ्चामृत, कुशकूर्च, श्वे तपुष्प, अक्षत, नवपल्लव को मूलमन्त्र द्वारा शोधन कर घटमें निक्षेप करे। अनन्तर कर्पू र वासित, विपरीत क्रमसे पठित क्षकारादि अकारान्त मातृका वर्ण्मय अमृत स्वरूप सुविमल तीर्थ

गङ्गादि सर्वतीर्थानि समुद्रात् सर्वदेवताः । आवाह्य स्थापयेत्तत्र क्षिप्त् वा गन्धाष्टकं कलाः ॥ संपूज्य विधिवत् सर्वाघटे सर्वं पयः क्षिपेत् । आच्छाद्य विधिनाभ्यच्च द् घटं सर्वमयं ततः ॥१४॥ यन्त्र स्वर्णादि पातस्थं लिखितं सुमनोहरम् । घटे संस्थाप्य तत्रैवाधारादींश्र्याभिपूजयेत् ॥१४॥ वसुयुग्मदलोपेतं कमलं केशरान्वितम् । सर्काणकं चतुर्द्वारतोरणाश्चितमुत्तमम् ॥ रेखात्रयसमायुक्तं वसुवज्जसमन्वितम् । चन्दनालिप्तपात्रे च लिखेत् स्वर्णशलाकया ॥

जलको तीनवार मूलमन्स से शोधन कर घटमें निक्षेप करे। अथवा क्षीरीवृक्ष प्रभृति का क्वाथ उसमें डाले ॥१३॥ पुनइच ग्रन्य एक शङ्कको लेकर जल अथवा क्वाथसे उसे भरकर उसमें लिपदा गायत्री जप करे। तीर्थ समुद्र देवता वर्गका आवाहन तथा पूजा करके जल में गन्धाष्टक विलोडन कर वह्लि सूर्य सोमसम्बन्धी अष्टातिंशन् कला एवं प्रणव सम्बन्धी पञ्चाश कलाका आवाहन कर प्रतिष्ठा करे। शङ्कस्थ जलका निःक्षेप कुम्भमें करे। पश्चात् इन्द्रवल्ली आग्र– पल्लव सपुष्पादि शराव द्वारा मुखको आच्छादितकर भगवदाविभाव हेतुक सर्वतत्त्वात्मक घटका श्रीभगवान्के साथ अभेद भावना कर आसनादि नैवेद्यान्तके द्वारा घटकी पूजा करें ॥१४॥ अनन्तर स्वर्णादि पात्नस्थित परम मनोहर रूपसे लिखित पूजायन्त्र का स्थापन उस घटके उपर करे, उस मन्त्रमें आधार शक्तचादि पीठ मन्त्वका घ्यान कर पीठादि न्यास क्रमसे पूजा करें ॥१४॥ सम्प्रति पूजन मन्त्वका उद्धार क्रमको कहते हैं। स्वर्णादि पात्रमें चन्दनादि लेपन कर स्वर्ण शलाका द्वारा पोड़शदलयुक्त द्वात्रिंशत् केशराङ्कित

सकणिक चतुर्दार व चतुस्तोरण शोभित सदलाग्र उत्तम समविभक्त वृत्तत्रययुक्त व अष्टवज्ञ समन्वित एकपद्म ग्रङ्कान करे, उक्त पद्मके कणिका में एकचतुष्कोरा आसन अङ्कितकर उसके मध्यभाग में प्रेमवीज एवं उसके वहिर्देशे में एकषट्कोण अङ्कित करे, उसके षड़् गह्वर में व चतुष्कोण भूगृहके चतुष्पार्श में कामवीज लिखें, स्वर्णादि पात्र में कुम्कुमादि द्वारा श्रीचैतन्यानन्द नामक यन्त्रको लिखकर जो बाहु अथवा कण्ठमें धारण करेगा वह प्रेममयी भगवद्भक्ति प्राप्त कर कृतार्थ होगा ॥१६॥ उक्त मन्त्र द्वारा आधारशक्तघादि की पूज्या करके पूर्ववत्त निज हृदयस्थित श्रीभगवाम का घ्यान करे । पश्चात् मूलाधार व श्रुद्वयरूप पद्माकार चक्रस्थित मूलमन्त्रात्मक परमानन्दघन हेतु सर्वोत्कृष्ट व विद्युत्तकोटिवत् समुज्ज्वल तीन तेजो धाराकी चिन्ता करे । श्रनन्तर प्रेमवीजके सहित उक्त तेजकी अभेद भावना करे । तदनन्तर उक्त तेजके किश्विदंश वाहर कर

चतुरस्र' कणिकायामासनं मध्यदेशतः । प्रेमवीजं लिखेत्तत्न वहिः षट्कोणमुत्तमम् ॥ षड्गह्वरे कामवीजं चतुष्कोणे भुवःपुनः । चैतन्यानन्दनामानमिमं यन्त्रं विलिख्य च ॥ स्वर्णपात्रे कुङ्कः मेन धारयेद् यः समाहितः । भक्तिर्भागवती प्रेमलक्षणा तस्य सिध्यति ॥१६॥ उपर्य्युपरि तत्रैव क्रमादाधारशक्तिकान् । सम्पूज्य पूर्ववद् ध्यात्वा भगवन्तं हृदिस्थितम् । मूलहृद् भालकमले तेजस्नयमनुत्तमम् ॥ तडि़ल्लताभं तत्रैकीकृत्य प्रेम्ना ततो वहिः । निःसार्थ्य किञ्चित् संस्थाप्य भक्तचा पूजासने ततः ॥

चन्द्रिका

भक्तिके साथ पूजार्थ स्थापित आसन में साकार रूपमें रखकर उसमें निज इष्टमूर्ति आविभू त हुए हैं जानकर मूलमन्त्रके अङ्ग अक्षर व पदसमूह विन्यस्तकर पश्चात् आवाहन करे ॥१७॥ मन्त्री आवाहनादि अष्टमुद्रा प्रदर्शन कर मूलमन्त्र द्वारा आवाहन करें। पश्चात् मूल-मन्त्रसे जीवन्यास प्राराप्रतिष्ठा कर अर्घ्य दान करें। एवं पाद्यादि षोड़शोपचार से यथाविधि पूजनकर विद्वान् साधक स्वहस्त गृहीत अञ्जलिके मध्यमें प्रथम प्रत्येक दो में एक एवं यूगपत् छै में एक एक रूपसे पञ्चपुष्पाञ्जलि दान करें। श्रोतकृष्ण तुलसी श्रोतचन्दन मिश्रित कर करवीर पद्मपुष्प श्वेतरक्त चन्दन मिश्रितकर दक्षिण वाम पद, हृदय, मस्तक व सर्वाङ्ग में अर्पण कर श्रीमहाप्रभु की पूजा करें ।।१८।। पूर्वोक्त प्रकारसे यथाविधि श्रीभगवान् की महापूजा कर परचात् उनके अङ्गादि ग्रावरण अर्थात् मूलमन्त्र सम्वन्धि अङ्गवर्ण व पदका पूर्वोक्त न्यासस्थान मस्तक आदि व उनके नित्य परिवार वर्गकी यथाविधि क्रमशः गन्धपुष्पादि द्वारा साधक जीव पूजा करें। उक्त आवरण पूजाहेतु श्रीमन्महाप्रभुसे अनुमति लेकर मूलमन्त्र द्वारा तीनवार पुष्पाञ्जलि प्रदान करे ।।१९।।

एवं सम्पूज्य विधिवदङ्गाद्यावरणं ततः । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः क्रमेण विधिवन्नरः ।। तत्रानुज्ञां प्रभोः प्रार्थ्य क्षिपेत् व्यञ्जलि मूलतः ।।१६॥

आवाहन्यादिभिर्मन्त्रोमुद्राभिरष्टभिस्तथा । संस्थाप्य मूलमन्त्रेण दद्यादर्ध्यं प्रकल्पितम् ॥ ततः पाद्यादिभिर्देवं संपूज्य विधिवत् सुधीः । तत्रैव अञ्जलिभिः षड़्भिः पादहृन्मस्तके पुनः ॥ दक्षेवामे च सर्वाङ्गे तुलस्यादिभिरर्चयेत् । करवीराम्बुजैः शुक्लैरक्तैस्तच्चन्दनान्वित्तैः ॥१८॥

श्रीश्रीभक्ति

अनन्तर यन्त्रस्थ कणिकाके चतुष्कोण में (आग्नेयादि चतुष्कोणमें) हृदयादि अङ्गदेवता चतुष्टय की पूजा गन्धपुष्प द्वारा करें। पश्चात् सम्मुख में नेत्र देवता की, पूर्वदिक में अस्त्र देवता की पूजा करें। ये षट् देवताओं के वर्ण् क्रमशः रक्त श्यामपाटल शुक्लकृष्ण एवं अनलके समान है। स्वर्ण् सदृश वसन, विल्ठेपन युक्ता, दिव्यालङ्कार विशिष्टा,बर व अभयप्रद युगलकर शोभिता, प्रेमस्निग्धनेत्रा, कल्याण स्वरूपा एवं स्त्रीरूपा चिन्तन करे।।२०॥ उसके वहिर्भागमें जो षट् कोण लिखित है, उसके मध्यमें श्रीभगवान् के अग्रवर्त्ती कोणमें द्विजपुत्र गदाधर अर्थात् श्रीलगदाधर पण्डितगोस्वामी एवं दक्षिण वामभाग में स्वरूपदामोदर श्रीमन्नरहरि हैं। पश्चात् भागमें दास गदाधर,उनके दक्षिण वामभागमें वामुदेवदत्त शिवानन्द सेनकी पूजा करे। येसव प्रेमवशतः श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुखारविन्द दर्शन से पुलकव्याप्त सर्वाङ्ग एवं दिव्यमाल्यादि पूजोपकरण शोभित हस्त है,

आग्नेयादिचतुष्कोणे चतुरस्रासनस्य च । संपूज्यगन्धपुष्पाभ्यां हृदयाद्यङ्गदेवताः ॥ नेत्रमग्रे चतुर्दिक्षु पूर्वादिष्वस्रदेवताः । रक्तश्यामपाठलाभशुक्लकृष्णानलप्रभाः ॥ सुवर्णवसनालेपयुक्ता दिव्यविभूषणाः । मुवर्णवसनालेपयुक्ता दिव्यविभूषणाः शुभाः ॥२०॥ तद्वहिः षटसु कोणेषु पूज्योऽग्रे द्विजनन्दनः । गदाधरो दक्षभागे न्यासी दामोदरस्ततः ॥ वामे श्रीमन्नरहरिःपश्चाद्दासोगदाधरः । दक्षे दत्तो वासुदेवः शिवानन्दश्च वामतः ॥ प्रेम्ना प्रभुमुखाम्भोजप्रेक्षकाः पुलकाकुलाः । दिव्यमाल्यकराम्भोजाः ॥२९॥

एतेपूज्या विधानतः ॥ तद्वहिः केशरेष्वग्रे नित्यानन्दो जगत्पत्तिः । आचार्य्योऽद्वैतनामापि मुरारिश्रीनिवासकौ ॥ पुरी स्यान्माधवोज्ञेयः परमानन्द एव च। ब्रह्मानन्दोऽपि सन्नचासी नृसिंहानन्द इत्यपि ॥ भारती केशवोज्ञेयः सर्वविद्याविशारदः । गोविन्दानन्द गोविन्दासौ बक्रेश्वरस्ततः ॥ हरिदासो मुकुन्दश्च रामः सङ्गीततत्परः । हरिदासो द्विजवरः सर्वेचन्दनमालिनः ॥ हरिनामपराःकेचित् केचित्तन्न।म तत्पराः । प्रेमाङ्कुर समायुक्ताः प्रेमाश्रुनयनोज्ज्वलाः ॥२२॥ तद्वहिः पत्रमध्ये च सार्वभौमस्ततः परम् । वल्लभो जगदानन्दो मुकुन्दो रघुनन्दनः ॥ जगन्नाथः शचीदेवी गोविन्दघोष एव च। काशीश्वरः कृष्णदासः श्रीदामदास एव च ॥

38

उन सवके पूजन भी यथाविधि करें ॥२१॥ उक्त षट्कोणके वहिभाग में इन सवकी पूजा यथाविधि करें । पूर्वादि क्रमसे अग्रकेशर में जगत्पति श्रीनित्यानन्द श्रीमदद्वेताचार्य, मुरारि,श्रीनिवास,माधवेन्द्र पुरी, परमानन्दपुरी, ब्रह्मानन्द यति, नृसिंहानन्द यति, सर्वविद्या-विशारद केशवभारती गोविन्दानन्द गोविन्ददास, वक्रेश्वर, सङ्गीत तत्पर हरिदास, मुकुन्द राम एवं द्विजश्रेष्ठ हरिदास । ये सव चन्दन माल्यधारी, हरिनाम रत कोई कोई कृष्णचैतन्य नाम गान तत्पर हैं । सव ही प्रेमाङ्क रयुक्त एवं प्रेमाश्रृपूर्ण नयनके द्वारा समुज्ज्वल हैं ॥२२॥ केशरके बहिर्भागस्थित पूर्वादि क्रमसे प्रथम सावंभौम

-

सुन्दरानन्द नामादि परमेश्वर दासकः । पुरुषोत्तमदासः स्याद्गौरीदासस्ततः परम् ॥ कमलाकरस्ततोऽभ्यर्च्चः सर्वे दिव्यानुलेपनाः । ध्येया दिव्याम्बराः प्रेमरस विह्वलचेतसः ॥२३॥ पत्राग्रे तद्वहिः पूज्याज्ञानानन्दस्ततः परम् । घोषश्रीवासुदेवश्च प्रतापरुद्र एव च ।। रामानन्दो राघवश्च प्रद्युम्नः श्रीसुदर्शनः । वाणीनाथो विष्णुदासो दामोदर पुरन्दरौ ।। आचार्य्यचन्द्रो भगवान् चन्द्रशेखर एव च। चन्दनेश्वर नामापि पण्डितः श्रीधनञ्जनः ॥ सर्वे भागवता गौरप्रेमविहवल मानसाः । हरिनामरता ध्येया दिव्यमाल्यकराम्वुजाः ॥२४॥ तद्वहिर्दिक्षुदिक् पालाः पूज्या भक्तिपरायणाः । तत्तद्वीजादि युक्ताश्च तत्तद्वर्ण विभूषणाः ॥

प्रदक्षिण क्रमसे वल्लभ, जगदानन्द, मुक्रुन्द, जगन्नाधमिश्र, शचीदेवी, गोविन्द घोष, काशीश्वर, कृष्णदास, श्रीराम दास, सुन्दरानन्द, आदि परमेश्वर दास, पुरुषोत्तम दास, गौरीदास, कमलाकर ये षोड़शजन की सेवा करें, उक्त सवजन हो दिव्यानुलेपन व वस्त्रयुक्त एवं प्रेम-रसाकुलित चित्त हैं ॥२३॥ उसके बहिर्भागस्थ दलाग्र में पूर्वकी भाँति ज्ञानानन्द, वासुदेव घोष, प्रतापरुद्र, रामानन्द, राघव, प्रद्युम्न, श्रीसुदर्शन, वाणीनाथ, विष्णुदास, दामोदर, पुरन्दर, आचार्य्यचन्द्र, भगवान्, चन्द्रशेखर, चन्दनेश्वर, धनञ्जय पण्डित, ये षोड़श व्यक्ति पुजनीय है, यह सव परमभागवत् श्रीगौराङ्ग प्रेममें व्याकुलचित्त, हरिनाम सङ्घीत्तंन तत्पर व करकमल में दिव्यमालाधारण किए

इन्द्रोऽग्निर्यम, इत्येव नैऋं तो वरुणस्तथा । वायुः कुवेर ईशानो दिक्ष्वनन्तोऽध ऊर्द्धतः॥ लोकेशः॥२४॥ तद्वहि दिक्षु तदस्त्राणि प्रपूजयेत् । वज्प्रादीन्यष्टमूत्तांनि चक्राब्जेत्वध ऊर्द्ध योः ॥ प्रभोः पार्षदरूपाणि स्वलक्ष्माढ्यानि मौलिषु । ततो नामाष्टकेनापि तस्मैपुष्पाञ्चलीन् दिशेत् ॥२६॥ इति सम्पूज्य धूपश्चदीपं नैवेद्यमग्रतः । स्थापयित्वा अस्त्रमन्त्रेण संप्रोक्ष्यशोषणादिभिः ॥ वायुवीजादिभिर्वामपाणिना शोधयेत् पुनः । संरक्ष्य चक्रमुद्राभि धेंनुमुद्रामृतीक्रृतम् ॥

हुये है ॥२४॥ उसके बहिर्भाग में अष्टदिक् में भक्ति परायण वीजादि समन्वित, कपिशादि वर्ग्यविशिष्ट, विशिष्ट भूषणभूषित इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, बायु, कुवेर, ईशान, ये अष्टदिक्पाल, अधोदेश में अनन्त ऊर्द्धदेश में ब्रह्मा, ये दिक्पालद्वय की पूजा करें। नैऋत वरुणदेवके मध्यमें अनन्त, ईइन्द्र शान देवके मध्यमें ब्रह्मा की पूजा होंगी। वीजादि-आदि शब्द से निज निज आधिपत्य अस्त्रवाहन परिकरगण को जानना होगा। प्रयोग इस प्रकार है—ओं लां देवाधिपत्तये सवाहनाय सपरिकराय, कपिशवर्णाय दिव्यमणिगरा किरणविस्फुरणाय नमः'' इत्यादि। क्वचित् वर्ण एवं भूषण का प्रयोग भी होता है ॥२४॥ उसके वहिर्भाग में पूर्वादि अष्टदिक् में मूर्त्तिमान् श्रीप्रभुके पाषदरूप में विद्यमान् निज निज मस्तक में अस्त्र चिह्तयुक्त वज्ज, शक्ति, दण्ड, खड़्ग, पाश, अङ्क्रुश, गदा, त्रिशूल ये अष्ट-इन्द्रादि दिक्पाल समूहके अस्त्र हैं, अधोदेशमें चक्र, ऊर्द्धदेशमें पद्यकी पूजा करें। तदनन्तर नामाष्टकके द्वारा श्रीमन्महाप्रभु को पुष्पाञ्जलि प्रदान करें ॥२६॥ उक्त प्रकारसे आवरण पूजासम्पन्नकर

जप्तं मूलेनाष्टकृत्वस्तुलस्या पूजितंकृती । निवेद्य मूलमन्त्रेण घण्टां तन्मन्त्रमन्त्रितां ॥ वादयन् वामहस्तेन नीचंदंद्यात् पुनः पुन, । धूपमापादमामौलि सप्तवारं प्रदर्शयेत् ॥ दीपं गृहीत्वा नैवेद्यं तन्निवेदन मुद्रया । तन्मन्त्रेनैव परया भक्तचा श्रीप्रभवेऽर्पयेत् ॥ निवेदयामि भवते जुषाणेदं हवि हरे । स्थापयित्वा पुनर्भू मौ कर्पू र वासितं परम् ॥ गण्डूषं दत्वा मन्त्रेण ग्रासमुद्रां प्रदर्शयेत् । सच्येन चोत्पलाकारां दक्षेण पश्चमुद्रिकाः ॥ यथाक्रमं भोजयित्वा हुत्वा च विधिवद्वालि । ग्रहादिभ्यः समर्प्याथ पुनर्गण्डूष मादरात् ॥ दत्वाग्रे त्रिः कर्मकूर्य्यात् स्वार्पणान्तं ततोन्यसेत् ॥२७॥

साधक धूप, दीप, नैवेद्य पात्रका स्थापन श्रीभगवान् के सम्मुख में करके अस्त्रमन्त्र जप्तजलके द्वारा प्रोक्षण एवं चक्रमुद्रा भ्रमण कराकर तद्द्वारा संरक्षण करे। पश्चात् शोषणादिरूप वायुवीजके द्वारा वामहस्त शोधन करे, अर्थात् प्रथम द्वादशवार वायुवोज जप्तजल प्रोक्षण करे। पश्चात् दक्षिएा करतल में अमृतवीज की चिन्ता करके तत् प्रदर्शनोत्थित अमृत धारासे पूर्ण मानकर मूलमन्त्र जप्तजल का प्रोक्षण करे। अनन्तर घेनुमुद्राके द्वारा अमृतीकृत अष्ठवार मूलमन्त्र जप्त एवं तुलस्यादि द्वारा पूजित धूपादि मूलमन्त्रोच्चारण पूर्वक, एष धूपो नमः, एष दीपो नमः, एतन्न वेद्य श्रीकृष्णचैतन्याय कल्पयामि कहकर निवेदन करे। उसके मध्यमें प्रथम धूपपात्र तन्निवेदन मुद्रासे ग्रहण कर तन्मन्त्र उच्चारण पूर्वक चरण से नाभिदेश

संहारमुद्रया देवं हृदि संस्थाप्य यत्नवान् । विष्वक्सेनाय निर्माल्यं दत्त्वाकिश्चित् स्वयं ततः ॥ गृहीत्वा तन्मयो भूत्वा सर्वं स्मृत्वा चिदात्मकम् । घटे संयोज्य तं स्पृष्ट्वा शतमष्टोत्तरं जपन् ॥ कृतोपवासं पूर्वेद्युः शिष्यमानीय वामतः । भूतशुद्धचादिकं कृत्वा घटंनीत्वा तथान्तिके ॥ देवं प्रार्थ्यमन्त्नपूर्तश्चाभिसिश्च द्घटोदकैः ॥२८॥

पर्यन्त उत्तोलन कर जयध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा, मन्त्र द्वारा वाम हस्तसे घण्टा वादन पूर्वक पुनः पुनः अर्पण करें। दीपका अर्पणभी उक्त मन्त्रसे करे-प्रथम श्रीमूर्तिक पाददेश से मस्तक पर्यन्त सातवार प्रदर्शन कर, पश्चात् नैवेद्य मुद्रासे दोनों हाथोंसे नैवेद्य को उत्तोलन कर ''निवेदयामिभवने जुषागोदं हविर्हरे'' इस मन्त्रसे परम भक्तिसे श्रीमन्महाप्रभु को नैवेद्य अर्पण करे । भूमि में नैवेद्य पात्रका स्थापन कर कर्पू रवासित गण्डूष परिमित जलसे अमृतोपस्तर एगमसि स्वाहा कहकर मूलमन्त्र का उच्चारण कर वामहस्त में प्रदान करे, वामहस्तसे प्रफूल्ल उत्पलाकार ग्रासमुद्रा एवं दक्षिण हस्तसे प्राणादि पञ्चमुद्रा का प्रदर्शन उन उन मन्त्रसे करें। प्राणादि शब्दसे प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान को जानना होगा, मुद्रा एवं मन्त्र इस प्रकार हे-अङ्ग ष्ठके द्वारा कनिष्ठा अनामिका को स्पर्शकर 'ओं प्राणाय' स्वाहा, तर्जनी मध्यमा को स्पर्शकर 'ओं अपानाय स्वाहा' मध्यमा अनामिका को स्पर्शकर 'ओं व्यानाय स्वाहा' तर्जनी मध्यमा अनामिका को स्पर्शकर 'म्रों उदानाय स्वाहा' एवं तर्जन्यादि सकलाङ्गुलीको स्पर्शकर 'ओं समानाय स्वाहा' । अनन्तर यथाविधि होम करके ग्रहपूजा करके 'भगवन्नाचमन अमृतापिधानमसि स्वाहा', कहकर पुनर्वार गण्डूष जलभगवदग्रमें वारत्रय समर्पण कर आत्मार्पण पर्यन्त सकलकमं करे, उसके वाद यथाविधि प्रणाम करे ॥२७॥

धृत्वांशुके अथाचम्यभक्तचासीनस्य सन्निधौ । विचिन्त्य देवं हृदये भक्तचा देशिकसुप्रसन्नधीः ॥ पूजयित्वा अर्ध्यपाद्याद्य रात्मानं शिष्यमेव च । वाससाआच्छाद्य रुद्धाक्षं दिव्यदृष्टचावलोकयन् ॥ न्यस्य मूध्निकरं तस्य दक्षकर्णे मनुंवदेत् । विधिवद् वारतितयं सचैकचं भावयन् पठेत् ॥ गुरुदैवतमन्त्राणां ततस्तस्य करेऽर्पयेत् । समानफलदोस्त्त्वेष आवयोर्मन्त्र इत्यपि ॥ तुलसी सहितं नीरं शिष्यः स्वस्ति ब्रबोत्विति । लब्धा शुभ्राशिषोऽन्यच्चजायतेपूर्वमानसः । यथाशक्तिजपेन्मन्त्रं गुरुः शिष्यश्र शान्तधीः ॥ विनयावनतस्तस्माच्छिक्षेत समयादिकम् ॥२६॥

अनन्तर साधक संहार मुद्रा प्रदर्शन कर श्रीमन्महाप्रभु के आवरण देवताके साथ निज हृदय मध्यमें स्थापन करे । ओं विष्वक् सेनाय नमः' कहकर नैवेद्य का शतांश अथवा सहस्रांश यथाविधि दान कर स्वयं किन्धित् ग्रहण करे । पश्चात् दीक्षाङ्गभूत घटमण्डपादि समस्त वस्तुको अधिष्ठातृ चिद्रूप मानकर वामहस्तके द्वारा घटका स्पर्श करे, एवं मूलमन्त्र का जप अष्टोत्तर शतवार करे । अनन्तर कृतोपवास शिष्य को उत्तर दिगस्थ मण्डपे आनयन पूर्वक भूतशुद्धि मातृकान्यास पीठादिन्यासान्त कार्यसमूह शिष्य शरीर में करे । अनन्तर मङ्गल ध्वनि गीत वाद्य कीर्त्तनादिके सहित उम घटको शिष्यके समीप में लाकर निज हृदय में ग्रवस्थित देवताके निकट प्रार्थना करे कि-शरणागत शिशुके प्रति आप कृपा करें । अनन्तर उक्त घटस्थित जलके द्वारा शिष्यको यथाविधि अभिषेक स्नान करावें।।२८।। अनन्तर शुभ्र नववस्त्र युगल परिधान व आचमन कर भक्ति पूर्वक निज

श्रीश्रीभक्ति

ततः शिष्योगुरुभक्तया काञ्चनादिधनेन च । सन्तोष्य विधिवद् भूमौ प्रणमेत् पुनः देह समर्पणं कृत्वा तोषयद् गुरुमादरात् ॥३०॥ गुरुब्र ह्या गुरुविष्णु गुरुर्वेवोमहेश्वरः । गुरुरेव परंब्रह्म तस्मादादौ तमर्चयेत् ॥ अज्ञानतिमिरान्धस्येत्यादिनाप्रणमेत् सदा ।

82

आसन में उपविष्ठ शिशुके हृदय में देवता का घ्यान व कृतषड़ङ्गादि न्यास कर शिष्यके हृदय में देवता की प्रतिष्ठा कर परम सन्तुष्टवुद्धि देशिक पाद्यादि के द्वारा पूजन कर निज को वस्त्रावृत करें। पश्चात् वस्त्रावृतगुरु निमीलितनयनणिष्य को दिव्यद्षष्टिके द्वारा अपने को भगवद्रुप में अवलोकन कराकर शिष्यके मस्तक को निज करतल में स्थापन कर उसके दक्षिण कर्एामें मुलमन्त्र का उच्चारण तीन वार करे। शिष्य भी गुरु, देवता, मन्त्र की अभेद रूपसे भावना करे। तदनन्तर गुरु-यह मन्त्र हम दोनों को समान रूपसे फल प्रदान करे-कहकर शिष्यके हस्तमें तुलसी पत्रके सहित जल प्रदान करेंगे। शिष्य स्वस्ति कहकर उसको अङ्गीकार करे, एवं श्रीगुरुके समीप में भववन्निवेदित प्रसाद ग्रहण कर पूर्णमनोरथ होवे। पश्चात् गुरु व शान्तवुद्धि शिष्य,-आत्मशक्ति रक्षार्थ गुरु अष्टाधिक सहस्रवार एवं शिष्य अष्टाधिक शतवार मन्त्र का जप करे। अनन्तर शिष्य विनीत भावसे श्रीगुरुदेव के समीप से वैष्णवोचित आचरण ध्यानादि बैष्णव धर्मकी शिक्षा करें ॥२६॥ धिष्य, -- जुश्रुषाव काखनादि द्वारा श्रीगुरुदेवको सन्तुष्टकर यथाविधि दण्डवत् प्रणाम करेंगे, एवं पुनर्वार अति आदर पूर्वक देहादि समर्पण कर श्रीगुरुदेव को निरतिशय सन्तुष्ट करें ॥ ३०॥ गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही देव महेश्वर, गुरु ही परम्बहा हैं, अतएव उनकी पूजा सर्वाग्रमें करें। एवं 'अज्ञान तिमिसान्धस्य' मन्त्र कहकर नित्यकाल प्रणाम करें। श्रीगुरुदेव,

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् । पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वा चानृणी भवेत् ॥ यत् किञ्चिदन्नपानादिप्रियं द्रव्यं मनोरमम् । निवेद्य गुरवे पश्चात् स्वयंभुद्धोत प्रत्यहम् ॥३१॥ तिवेद्य गुरवे पश्चात् स्वयंभुद्धोत प्रत्यहम् ॥३१॥ शिष्यः शान्तो यतात्मा च गुरुभक्तिरतः सदा । व्रती सत्यवचानित्यं जपेन्मन्त्रं प्रयत्नतः ॥ एतेषां मन्त्रचर्याणां दशलक्ष्यं जपेत्सुधीः । होमस्तस्य दशांशेन तर्पणं तद्दशांशतः ॥ अभिषेकस्तद्दशो बाह्यणं भोजयेत्ततः । दशांश विधिना युक्तः पुरुश्चर्य्याविधेः क्रमात् ॥३२॥ इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां चतुर्थः पटलः ॥

जिसको एकमात्र अक्षर का भी उपदेश प्रदान किए हैं, पृथिवी में ऐसी कोई भी बस्तु नहीं है, जिस को देकर शिष्य गुरुसे अऋणी हो सकता है। अन्न पानादि जो भी प्रियबस्तु मनोरम हो, श्रीगुरुदेव को समर्पण करके परुचात् स्वयं ग्रहण करें ॥३१॥ शिष्य,-श्रान्त, नियतान्त:करण, गुरुसेवा निरत, सदा ब्रह्मचर्य्यशील, सत्यवाक् होकर नियतकाल यत्नपूर्वक अर्थात् जिससे अङ्ग ज्ञानि न हो, इस रीति से मन्त्र जप करे। मन्त्र चर्च्चार्के विवरसा के मध्यमें दशलक्ष वार मन्त्रजप, उसका दशांश एक लक्षवार होम, दशांश एक अयुत वार तर्पण, दशांश-सहस्रवार अभिषेक, दशांश, एकशत वार झाह्मण भोजन का अनुष्ठान करे, यह सब कार्य का अनुष्ठान वक्ष्यमारा पुरइचर्या विधिके क्रमसे होना आवश्यक है ॥३२॥

इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां चतुर्थपटलानुवादः ॥

···-- 0********

अथ पञ्चमः पटलः

88

अथ स्त्रोत्रं प्रबक्ष्यामि प्रत्यङ्गवर्णनं प्रभोः । त्रिकालं पठनादेव प्रेमभक्ति लभेन्नरः ॥१॥ कश्चिच्छ्रीकृष्णचैतन्यस्मरणाकुलमानसः । पुलकावचिताङ्गोऽपिसकम्पाश्चविलोचनः ॥ कथञ्चित् स्थैर्थ्यमालम्ब्य प्रणम्य गुरुमादरात् । स्तोतुमारब्धवान् भक्तया द्विजचन्द्रं महाप्रभुष् ॥२॥ तप्त हेमद्युति वन्दे कलिकृष्णं जगद्गुरुष् । चारुदीर्घतन्तुं श्रीमच्छचीहृदयनन्दनम् ॥३॥

अथ शब्द-ग्रारम्भार्थक है, दीक्षाङ्ग पूजाविधिके अनन्तर श्रीमन्-महाप्रभु की प्रत्यङ्ग वर्णन मयीस्तुति को कहते हैं। जिस का पाठ प्रातरादि कालत्रय में करने से जीव प्रभुके श्रीचरणों में प्रेमलक्षण भक्तिरूप महाफल प्राप्त करने का अधिकारी होगा ॥१॥ कोई अन्तरङ्गतम भक्त श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके स्मरण मात्न से व्याकुल चित्त, अतएव पुलकव्याप्ताङ्ग, कम्पान्वित, अश्रपूर्ण नेत्र होकर भी किसी प्रकार से चित्तस्थिर कर निज गुरुदेवको प्रणाम करके भक्ति पूर्वक द्विज कुलचन्द्र श्रीमन्महाप्रभु की स्तुति प्रारम्भ किए थे ॥२॥ जो तप्तकाञ्चनके न्याय समुज्ज्वल गौरवर्ग्त है। जो वर्त्तमान कलियुग में श्रीकृष्ण का ही श्रद्तियि आविर्भाव विद्येष हैं। जिन्होंने निज भक्ति प्रचारणादि द्वारा समग्र जगत्त के परमगुरु का कार्य सम्पादन किया है। जो परममनोरम दीर्घाकार विधिष्ठ हैं। श्रीमती श्वविकि हृदयानन्दकारी स्वयं भगवान् उन श्रीचैतन्यदेव की मैं वन्दना करता हूँ। इस श्लोकसे प्रारम्भ कर द्वात्तिश्व श्लोक पर्यन्त सर्वन्न 'वन्दे' किया का ग्रन्वय होगा ॥३॥

P

लसन्मुक्तालतानद्धचारुकुश्चितकुन्तलम् । शिखण्डाक्षतगन्धाढ्य पुष्पगुच्छावतंसकम् ॥४॥ अर्द्धचन्द्रोल्लसद्भाल कस्तूरोतिलकाङ्कितम् । भङ्गर्ुर भ्रूलताकेलिजितकामशरासनम् ॥ प्रेमप्रवाह मधुररक्तोत्पलविलोचनम् । तिलप्रसूनसुस्निग्धनूतनायतनासिकम् ॥ श्रोगण्डमण्डलोल्लासिरत्नकुण्डलमण्डितम् । सव्यकर्णसुविन्यस्तस्फुरच्च।रुशिखण्डकम् ॥ 82

जिनके परममनोरम, कुश्चित केशकलाप,-सुस्निग्ध नीलघनता गुणयुक्त है, शोभित मुक्तालताके द्वारा चूड़ाकार में शिरोदेश के सम्मुख भागमें निवद्ध है, एवं शिखण्ड अर्थात् मयूरपुच्छ व अक्षत गन्धविशिष्ठ कुसुम स्तवक शिरोभूषण रूपमें विराजमान है ॥४॥

जिनके अर्द्धचन्द्र सहश परम मनोहर ललाट देश,-मृगमदतिलक द्वारा अङ्कित है, जिन की प्रकृति कुटिल भ्रवल्ली निज विलास द्वारा कन्दर्पधनुष को पराजित कर रही है। अर्थात् जिसके दर्शनसे रमणी गणोंके हृदय में अप्राकृत कामरति समुद्दीपित होती है, इससे श्रीभगवान की महामन्मथता ध्वनित हुई है। जिनके रक्तोत्पल तुल्य नयनयुगल प्रेमस्त्रोत में भासमान है, सुतरां परम मधुर है, जिन की नासिका, तिलकुसुम के समान अतिमप्रृण, नवनिर्मितप्राय एवं सुदीर्घ है, जो परमस्वच्छ समुज्ज्वल निजगण्डमण्डल युगलमें नित्य नटनशील रत्नमय कुण्डल की च्छटासे समलङ्कृत है, जिनके वाम कर्एामें मनोहर मयूरपिञ्छ विन्यस्त है, जिनके अधरकिशलय सुमधुर मन्द हास्यसे नेत्रमनके सुखद अथच सिन्दूरादि के समान लोहित वर्णसे रज्जित है, जो ईषद् वन्धुर भावसे सुसज्जित सुस्निग्ध किरणावलि शोभित मुक्ताफल सहश दशनश्रेणीसे समुज्ज्वल है। जिन्होंने प्रेममय सुमधुर आलापमात्र से जगज्जन के मनको वशीभूत

मधुरस्मितसुस्निग्धप्रारक्ताधरपत्लवम् । ईषद्दन्तुरितस्निग्धस्फुरन् मुक्तारदोज्ज्वलम् ॥ सप्रेममधुरालापवशीकृतजगज्जनम् ॥ त्रिकोणचिवुकं कोटिशरदिन्दुप्रभाननम् ॥४॥ सिंहग्रींवं महामत्तद्विरदोल्लासिकन्धरम् । आरक्तरेखात्वययुक्कम्बुकण्ठमनोहरम् ॥ मुक्ता प्रवालकलितहारोज्ज्वलित्तवक्षसम् । मज्ज्लणाङ्गदविद्योतिजानुलम्बिभुजद्वयम् ॥ यवचक्राङ्कितारक्त श्रीमत्पाणितलोज्ज्वलम् । स्वर्णमुद्रालसच्छ्रीमद्विमलाङ्गुलिपल्लवम् ॥ चन्दनागुरुसुस्निग्धं पुलकावलिर्चीचतम् । चारुनाभिलसन्मध्यं सिंहमध्यकृशोदरम् ॥

किया है। जिनके चितुक, त्रिको गाकार है, एवं असंख्य शारव पूर्णिमा के शशधर सहश श्रीमुखमण्डल शोभित है।।१॥ जिनके सिंहसहश ग्रीवादेश, महामत्त करिराज सदृश जिनके स्कन्धदेश विराजमान है। जिनके रक्तवर्ण रेखात्रययुक्त शङ्ख तुल्य कण्ठदेश अति मनोहर है। जिनके परिसर वक्षःस्थल मुक्ता प्रवाल रचित रत्नमय प्रालम्बादि हारद्वारा समुज्ज्वलीकृत है। जिनके भुजमण्डल, कङ्कण अङ्गद प्रभृति भूषणों से शोभित है, व आजानु लम्बित हैं। यव चक्राङ्कित कर पङ्कजद्वय है, एवं अङ्गुलि समूह स्वर्णाङ्गुरीयक द्वारा सुशोभित है, मलयज अगुरु प्रभृति विलेपन द्रव्यसे जिनके अङ्ग सुस्निग्ध एवं सुरभित है,पुलकावलि प्रभृति सात्विकादि भावभूषणोंसे विभूषित है, जिनके जघनस्थल सुचारु नाभिस्थल द्वारा सुशोभित है, जिनके मध्यदेश सिंहके मध्य देशके न्याय अतिक्षीण है, विचित्र चिन्न समन्वित दुक्कलके द्वारा कटिदेश शोभित है, उससे त्रिवलिरेखा

विचित्रचित्रवसनमध्यबन्धोल्लसद्वलिम् । सुचारुनूपुरोल्लासिकूजच्चरणपल्लवम् ॥ शरच्चन्द्रप्रतोकाशनखराजत् पदाङ्गर्ुलिम् । अङ्कर्शध्वजवज्रादिलसत्तलपदाम्वुजम् ॥६॥ कोटिसूर्य्य प्रतीकाशं कोटीन्दुललितद्युतिम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं कोटिलीलामनोरमम् ॥ साक्षाल्लीलातनुं केलितनुं श्रृङ्गारविग्रहम् । ववचिद्भावकलामूत्ति प्रस्फुरत् प्रेमविग्रहम् ॥ नामात्मकं नामतनुं परमानन्दविग्रहम् । भक्तचात्मकं भक्तितनुभक्तचाचारविहारिणम् ॥ 89

समुद्भुत हुई है। जिनके श्रोवरग पत्लव,-अतिमनोहर मञ्जीर रञ्जित निवन्धन शिञ्जन शब्दसे मधुर शब्दायमान है। जिनके श्रीचरण के अङ्गुलि समूह, शरचन्द्र सदृश नखनिकर द्वारा शोभित है, जिनके आरक्त श्रीचरणाब्जतल अङ्कुश घ्वज वज्र प्रभृति रेखा द्वारा सर्वदा सुशोभित है। उन श्रीशचीनन्दन देवकी में निरन्तर वन्दना करता हूँ ॥६॥ जो ग्रसंख्य सूर्य सहश महातेजस्वी थे, अथच जिनकी अङ्गकान्ति समवेत कोटि चन्द्रके न्याय नयनानन्द कारिगी थी। मूक्ता फलके मध्यमें जो एक कान्ति तरल रूपसे स्फूरित होती है, उस लावण्य कहते हैं, जिनके वह लावण्य कोटि कन्दर्पके समान परममनोहर है, जो अनन्त वैचित्र्यमय निज लीला विलासके द्वारा त्रिभुवन को आक्नष्ठ करने में समर्थ हैं। जिनके श्रीविग्रह, साक्षात् लीलास्वरूप विचित्र नमीदि स्वरूप में, श्रुङ्गाराख्यरस स्वरूप में कभी रत्यादि भावकला स्वरूपमें, प्रोहीप्त प्रेमरस स्वरूप में विराजमान हैं। जो साक्षात् नाम स्वरूप में वर्त्तमान हैं, अथच नाममय, विशुद्धविज्ञान घनानन्द स्वरूप जिनके श्रीविग्रह है, जो साक्षात् भक्ति हैं, अथच भक्तिमय श्रीविग्रह स्वरूप में प्रकट होकर

अशेषकेलिलावण्यं लीलाताण्डव पण्डितम् । शचीजठर रत्नाब्धि समुद्भूत सुधानिधिम् । अशेषजगदानन्दकन्दमद्भुतमङ्गलम् ॥७॥ स्फुरद्रासरसावेशमदालसविलोचनम् । क्वचिद्भक्तजनैदिव्यमाल्यगन्धानुलेपनैः ॥ वेष्टितंरससङ्गीतं गायद्भीरसलालसम् । क्वचिवाल्यरसावेशाद्गङ्गातीरविहारिणम् ॥ क्वचिद् गायति गायन्तं नृत्यन्तं करशब्दतः । घदन्तंशब्दमप्युच्चैः कुर्वन्तं सिंहविक्रमम् ॥ क्वचिदास्फोटहुङ्कारकम्पिताशेषभूतलम् ॥८॥

85

जगच्छिक्षानिबन्घन भक्ति सम्बन्धि आचार निवह को अङ्गीकार कर नित्य विराजमान हैं। जिनके अखण्ड विलास माधुय्यं में आत्माराम पर्यन्त समाकुष्ठ है। जो विचित्र विलासमय ताण्डव नृत्यमें परम पण्डित है,जो शचीगर्भरूप रत्नमय विशुद्ध क्षीरोदधिसे सुधाकर रूपमें परिपूर्ण रूपसे समुत्थित होकर जगदन्धकार विदूरित किए है। जो अखण्ड भूमण्डल के आनन्द का एकमात्र मूल है, एवं निखिल कल्याणमय गुणराशि को प्रकाश कर समग्र मङ्गलकारी वस्तुनिकर का भी मङ्गल स्वरूप में विराजित हैं ॥७॥ जो किसी समय रसावेश जनित मक्ततावशतः अलसभावयुक्त नेत्रयुगल घारण किये हैं, एतद् अवस्था में तद्भाव उद्दीपन के निमित्त दिव्यमाल्य गन्धानुलेपन विशिष्ट रससङ्गीत तत्पर भक्तमण्डली द्वारा परिवेष्टित होकर विचित्र नाट्यकलामय तद्रसास्वादनमें अत्यन्त लोलप हुए हैं, किसी समय वाल्यरसावेश वशतः गङ्गातीररूप रङ्गस्थल में विचित्र नाट्य लीलामें विहरणशील हैं, कभी भक्तगण, भावानुरूप गान आरम्भ करने से स्वयं भी तदनुकरण कर गान करते हैं। जनसवके

संगुप्तगोपिकाभावप्रकाशितजगत्नयम् । प्रापिताशेषपुरुषस्त्रीस्वभावमनाकुलम् ॥ निजभावरसास्वादविवशैकादशेन्द्रियम् । विदग्धनागरीभावकलाकेलिमनोरमम् ॥ गदाधरप्रेमभावकलाक्रान्तमनोरथम् । श्रीमन्नरहरिप्रेमरसविह्वलमानसम् ॥ सर्वभागवताहूतकान्तभावप्रकाशकम् । प्रेमदानललितद्विभुजं भक्तवत्सलम् ॥ प्रेमदानललितद्विभुजं भक्तवत्सलम् ॥ प्रेमाराध्यपदद्वन्द्वं श्रीप्रेमभक्तिमन्दिरम् । निजभावरसोल्लासमुग्धीकृतजगत्नयम् ॥ स्वनामजपसंख्यातिवैष्णवीकृतभूतलम् ॥र्द्र॥ 38

करतालानुसार नृत्य करते हैं। कभी विरह दशाकी स्फूत्तिके अनुसार उच्च शब्दसे रोदन करते हैं। एवं सिंह के समान विक्रम प्रकाश करते रहते हैं। तादृश प्रेमप्रचार के समय पाषण्डी के प्रति बाहुस्फोट हुङ्कार कर समग्र भूमण्डल को कम्पित करते हैं।।< चिरकाल जो अनर्पित था, उस गोपिका भावरूप महारत्न को जिन्होंने यथा तथा वितरण करत: त्रिभुवन को समुज्ज्वल किया है, जो अप्रतिहत भावसे निखिल पुरुषाभिमानी जीवगण को भी निज माधुर्यानुभवमें अनुकूल जानकर स्त्रीस्वभाव को प्राप्त कराये हैं,स्वीय भावरसास्वादन कालमें जिन की ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय मन एकादहोन्द्रिय विह्वल होकर मोह दशाको उपस्थित करतीं थीं, कलाविलासमयी नागरीकुल के भाव कलामय विलास परम्परासे विभूषित होनेसे जो परममनोहर होते थे। जिनके प्रत्येक मनोरथ, श्रीमद्गदाधर के भावमय विलास द्वारा समाक्रान्त थे,एवं जिनका मानस, श्रीमन्नरहरि के प्रेमास्वाद में एकान्त विह्वल हो जाताथा। जो समग्र भागवतगण द्वारा समाहत

नवद्वीपजनानन्दं भूदेवजनमङ्गलम् । अशेषजीवसद्भाग्यक्रमसम्मूतसत्फलम् ।। भयानुरागसुस्नेहभक्तिगम्यपदाम्बुजम् । नटराजशिरोरत्नं श्रीनागरोशिरोमणिम् ।। अशेषरसिकस्फुर्जन्मौलिभूषणभूषणम् । रसिकानुगतस्निग्धवदनाब्जमधुव्रतम् ।। श्रीमद्द्विजकुलोत्तंसं नवद्वीपविभूषणम् । प्रेमभक्तिरसोन्मत्ताद्वैतसेव्यपदाम्बुजम् ।।

20

होकर स्वनिष्ठ कान्तभाव को प्रकाश कन्ते थे, जिनके श्रीभुजयुगल प्रेमप्रदान विषय में लालित्यमय होते थे। जिनके भक्तवात्सल्यगुण जगत् में सुप्रसिद्ध है, जिनके चरणयुगल एकमात्र प्रेमसाधन से आस्वाद्य हैं, जो श्रीरूपा प्रेमभक्तिदेवी का नित्याधिष्ठानस्थल है, जिन्होंने निज भावरस प्रकार द्वारा जगत् को चमत्कृत किया है, एवं जो निज नामसङ्कीत्तन प्रचारकर समग्र भूतलको वैष्णव किए हैं।। हा। जो नवद्वीप निवासी जनगणके परमोत्सव स्वरूप हैं। समग्र ब्राह्मण कुलके सर्वविध कल्याण का मूल स्वरूप हैं। निखिल प्रासि निकरके सौभाग्यसे समुदित सत्फल स्वरूप हैं, एवं भय अनुराग, विशुद्ध स्नेहमय भक्तिमात्र द्वारा जिनके चरणकमल लम्य है, श्रेष्ठ नटगणके शिरोधार्य महारत्न, निखिल नागरशिरोमणि एवं समग्र रसज्ञवृन्दके दीप्ययान शिरोभूषण का भी विभूषण हैं। जो रसिकानुगत हैं अथच उनके प्रति परमप्रीति विशिष्ट जननिकर के प्रफुल्ल वदन कमलमें मत्त मधुकर स्वरूप हैं, परमोज्ज्वल विप्रकुलके शिरोऽलङ्कार हैं, एवं नित्यधाम श्रीनवद्वीप को अलङ्कृत किए हैं, प्रेमभक्ति रसास्वाद में विभ्रान्त चित्त श्रीमदद्वैतदेव जिनके चरणकमल का भजन नित्य करते हैं, जो श्रीनित्यानन्दके प्राणसर्वस्वभूत हैं, अथवा श्रीनित्यानन्द ही जिनका एकमात प्रीतिस्थान है। जो निखिल भक्तवृत्द के

नित्यानन्द प्रियतमं सर्वभक्त मनोरथम् । भक्तिसाध्यं भक्तबाध्यं भक्तरूपिणमीश्वरम् ॥ श्रीनिवासादि भक्ताग्रंः स्तुयमानं मुहुर्मुहुः । सार्वभौमादिर्वेदशास्त्रागमविशारदैः ॥ १०॥ य एवं चिन्तयेत् देवदेवेशं प्रयतोऽनिशम् । संस्तौति भक्तिभावेन त्रिसन्ध्यं नित्यमेव च ॥ धर्मार्थी लभतेघर्मं सभागवतमुत्तमम् । अर्थार्थी लभतेचार्थं कृष्णसेवाविधौ रतिम् ॥ कामार्थी लभते कामं प्रेमभक्तिविधानतः । संसार वासनामुक्तिं मोक्षार्थी विगतस्पृहः ॥ सद्विद्यां लभते विद्वान् कामसंसारकुन्तनीम् । काव्यार्थी कवितार्शक्ति कृष्णवर्णनशालिनीम् ॥

मनोरथभूत, भक्तिमाल प्राप्य, भक्तपराधीन, भक्तावेशधारी अथच वस्तुतत्त्व में साक्षात् परमेश्वर हैं, जो श्रीवासादि महाभक्तवृन्द, वेदादि सर्वशास्त्रपारग सावंभौम प्रभृति महाविद्वज्जनों के द्वारा निरन्तर उपर्य्यु परि स्तुति परम्परासे आराधित होते रहते हैं, मैं उन श्रीचैतन्यदेव की वन्दना करता हूँ ॥१०॥ जो जन उक्त रीतिसे निरन्तर सर्वदेवस्वरूप साक्षात् परमेश्वर श्रीमच तन्य देवका ध्यान करतः प्रतिदिन त्रिसन्धचा में भक्तिभाव से उनकी स्तुति करता है, वह धर्मार्थी होनेसे सर्वोत्तम भागवद्धर्म लाभ करेगा, अर्थार्थी होनेसे भगवत् सेवाकार्थ्य में परम अनुरागरूप अर्थ, कामार्थी होनेसे प्रेमस्वरूप में भक्ति क्रमप्राप्त काम, मोक्षार्थी होनेसे निस्पृह भावसे संसार कारण वासना की मुक्ति, विद्यार्थी होनेसे काममय संसार नाशिनी पराविद्या, काव्यार्थी होने से भगवल्लीला वर्णन शालिनी कविता शक्ति, अपुत्र होने से भगवदुपासक सुतरां सर्वजन पूज्य

अपुतो वैष्णवं पुत्रं लभते लोकवन्दितम् । आश्रयार्थो लभेच्छान्तं श्रीमद्भागवतं गुरुम् ॥ श्रीमच्छ्रीकृष्णचैतन्य पादाम्बुजेभृशम् । प्रेमानुरागललितां सद्भक्तिं लभतेनरः ॥११॥ इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां प्रत्यङ्गवर्णनो नाम पञ्चमः पटलः ॥ —०%***%

22

सत्पुत्र, त्रिताप सन्तप्त होकर शरणप्रार्थी होनेसे भगवद्भक्त परम-शान्त गुरुलाभ करेगा, एवं परिणाम में सर्वफलश्रेष्ठ श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरण कमलयुगल में प्रेम, एवं अनुराग से मघुर उत्तमभक्ति, निरन्तरभावसे प्राप्त करेगा ।।११।।

इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां पञ्चमपटलानुवादः ।। ——— क्र*——

अथ षष्ठः पटलः

अथ बक्ष्ये मन्त्रवरात् सर्वकामार्थसिद्धिदान् । कृष्णचैतन्यचन्द्रस्य प्रेमभक्तिसुसिद्धये ॥१॥ कृष्णेति द्वचक्षरोमन्त्रश्चैतन्यव्यक्षरोमतः । चतुर्वर्णो मन्त्रवरो ङेयुक् व्यक्षर एवच ॥ स च पश्चाक्षरोज्ञेयः प्रेमादिर्मनुरुत्तमः । प्रेमसम्पुटितोज्ञेयश्चैतन्य इति पश्चमः ॥

अनन्तर श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रकी प्रेमभक्ति लाभहेतु सकल लोकोंके सर्वाभोष्टप्रद उनके ही प्रधान प्रधान मन्त्र समूह का उल्लेख कररहा हूँ ॥१॥ "कृष्ण" यह दो अक्षर मन्त्र है, "चैतन्य" पद तीन अक्षर मन्त्र है, चतुर्थी विभक्ति के एक वचनान्त उक्त त्र्यक्षर मन्त्र ही चतुरक्षर श्रेष्ठमन्त्र है, उक्त चतुरक्षर मन्त्र ही प्रेमवीजादि होनेसे पञ्चाक्षर मन्त्र होता है। दो प्रेमवीज के मध्यगत "चैतन्य" यह कामादिश्चेत् पश्चमः स्यात् षड्क्षर इतीरितः । षड़क्षरो मन्मथान्तो मनुः सप्ताक्षरोमतः । विश्वम्भराय प्रेमादिः कामान्तोमनुरुत्तमः ॥ स्याच्छचीनन्दनो ङेयुग्वह्तिजायान्तको मनुः । अष्टाक्षरोमन्त्रवरः प्रेमाख्यादिर्नवाक्षरः ॥ दशाक्षरो मन्मथादि र्मन्त्रराजः प्रकीत्तितः ॥२॥ एतेषां नारदो ज्ञेयो मुनिश्छन्दो विराडि्ति । देवता कृष्णचैतन्यो वीजं प्रेमाख्यमुत्तमम् ॥ शक्तिर्वह्तिवधूः प्रोक्ता साद्याधिष्ठातृदेवता ।

प्रात्तप्रविद्धः आक्ता साद्याधिष्ठातृदवता । प्रेमाख्येन हि षड् दीर्घभाजा स्यादङ्गकल्पना ॥ प्रातः कृत्यादिकं कर्मयर्थापूर्वं समाचरेत् । पद्म वसुदलोपेतं कर्णिकाकेशरान्वितम् ॥

पश्चम मन्त्रभी पश्चाक्षर है, उक्त पश्चम मन्त्र कामवीजादि होनेसे षड़क्षर मन्त्र होता है। प्रेमवीजादि एवं कामवीजान्त 'विश्वम्भराय' यह पदभी सप्ताक्षर उत्तम मन्त्र है। शचीनन्दन शब्द चतुर्थी के एक वचनान्त एवं स्वाहान्त होनेसे एक मन्त्र होता है, वह ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र अष्टाक्षर मन्त्र है। उक्त अष्टाक्षर मन्त्र प्रेमवीजादि होने से नवाक्षर एवं उक्त नवाक्षर मन्त्र पुनः कामवीजादि होकर दशाक्षर मन्त्रराज रूपमें कीत्तंन होगा ॥२॥ यह सव मन्त्रके श्रीनारद ऋषि विराट् छन्दः श्रीकृष्ण देवता प्रेमाख्य वीज स्वाहा शक्ति, आद्यार्शाक्त अधिष्ठात्री देवता है। प्रेमाख्य वीज का स्वरांश परित्याग कर उसके स्थान में आकार, ईकार, उकार,एकार, ऐकार, विसर्ग, यह षट् दीर्घवर्ण योगकर मन्त्र की षड़ङ्गकल्पना करे। ये अङ्गसमूह अङ्गकराङ्ग न्यास. अङ्गपूजा में प्रयुक्त होते हैं। साधक ग्राचमनानन्तर प्रातः कृत्यादि स्वात्मार्पणान्त कर्म का

वन्द्रिका

षट्कोणं विलिखेन्मध्ये वीजं तत्र लिखेत् पुनः । तत्र सम्पूजयेद् भक्तया भगवन्तं सुसाधकः ॥३॥ श्रीमन्मौक्तिकदामवद्धचिकुरं सुस्मेरचन्द्राननम् । श्रीखण्डागुरुचारुचित्रवसनसग्दिव्यभूषाश्चितम् ॥ नृत्यावेशरसानुमोदमधुरं कन्दर्पवेशोज्ज्वलं । चैतन्यं कनकद्युति निजजनैः संसेव्यमानं भजे ॥ ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यं बहिरङ्गं स्ततोबहिः । दिक्पालास्त्राणि सम्पूज्य जपेन्मन्त्रं सुसाधकः ॥ लक्षेक सङ्ख्य्या प्रोक्तो जपो होमादयः क्रमात् ॥४॥

28

आचरण पूर्वोक्त प्रकार से करें। प्रथमतः कणिका एवं केशर समन्वित एक अष्टदलपद्म षट्कोणयुक्त अङ्कित करे, पश्चात् उक्त पदाके मध्यस्थल में प्रेमवीज लिखकर उसके उपर भक्तिके सहित श्रीचैतन्यदेव की सम्यक् पूजा करें ॥३॥ जिनके केशकलाप परमोज्ज्वल मुक्तामाला द्वारा चूड़ाकार में निवद्ध है, जिनके चन्द्रानन शोभनस्मित विशिष्ट है, जो चन्दन अगुरुरूप अनुलेपन, विचित्र कारुकार्य खचित वस्त्रयुगल, विचित्र पुष्पमाला, दिव्य अलङ्कार निकर द्वारा शोभमान हैं। नटन लीला का जो आवेश रस है, उसको अङ्गीकार कर परममधुर एवं कामोद्दीपक वेशमें समूज्जल हैं। स्वर्णकान्ति, निज नित्य परिकरगण द्वारा स्व स्व भावानूसार सेव्यमान् श्रीचैतन्य देवका में भजन करता हूँ। इस रीतिसे घ्यानकर नित्यपूजा करें। पश्चात् योगपीठ पद्मके बहिभाग में हृदयादि अङ्ग के द्वारा अनन्तर तद्वाह्य देशमें दिक्पाल वज्जादि अस्त समूह की यथाक्रमसे पूजा कर मन्त्र जप करें। उक्त मन्त्र समूहके पुररचरण में एकलक्ष मन्त्र जप,दशांश क्रमसे होम तर्पणादि करें ॥४॥

पुनरन्यमनुंबक्ष्ये सर्वसिद्धिफलप्रदम् । वेदादि हृद्भगवते कृष्णचैतन्य एवच ॥ ङेयुतो मन्त्रराजोऽयं त्रयाधिकदशाक्षरः । मुनिन्नं ह्या विराट्छन्दो देवतान्यासिरूपधृक् ॥ चैतन्यः परमानन्दः प्रणवो वीजमूत्तमम् । नमः शक्तिविनियोगो भक्तिसिद्धचर्थ इत्यपि ॥ आचकायाग्निदयिता हृदयाय नमो हृदि । विचक्रायानलवधूः शिरसेवह्निनागरी ॥ सुचक्रायाग्निवरदा शिखायैवषड़ित्यपि । त्रैलोकच रक्षणोपेत चक्रायाग्निप्रियाततः ॥ कवचाय तथा वम्मं त्वसुरान्तक पूर्वकम् । चक्रं पुनश्चतुर्थ्यन्तं स्वाहास्त्राय तथास्त्रकम् ॥ नाराच मुद्रया कुर्यात् ध्वनिव्रितयमेव च । एवमङ्गादिना कुर्यात् करन्यासं सुसंयमी ॥ अपरं पूर्ववत् कृत्वा ध्यायेद् हृदयपङ्कजे ॥४॥

पुनश्च सर्वसिद्धि फलप्रद श्रीमन्महाप्रभु के अन्य एक मन्त्र कहता हूँ। प्रथमतः प्रगाव, तदनन्तर हृढीज नमः, पश्चात् 'भगवते' पद तदन्त में चतुर्थी विभक्ति के एकवचनान्त कृष्णचैतन्य शब्द । यह ही त्रयोदशाक्षर मन्त्रराज है। इस मन्त्रके ऋष्यादि न्यास इस प्रकार है – ब्रह्माऋषि, विराट् छन्दः, न्यासिरूपी परमानन्द श्रीचैतन्यदेवता प्रणव वीज, नमः शक्ति, भक्तिसिद्ध्यर्थ विनियोग। अङ्ग कल्पना यथा-हृदय में आचकाय स्वाहा, हृदयाय नमः,शिरसि, विचकाय स्वाहा, शिरसे स्वाहा, शिखामें, सुचक्राय स्वाहा, शिखाय वषट्, सर्वाङ्गमें, त्रैलोकचरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हूँ। चतुर्दिक

अत्यन्तातप्तहेमद्युतिरुचिरतनुंदीर्घदेहाक्षिवाहुम् । श्रीखण्डालिप्तवक्षःस्थलकलिततलसन्मालतीमाल्ययुग्मम् ॥ आरक्ताभासवासोयुगललितवपुर्नाट्यलीलाकलाढ्यम् । वन्देचैतन्यचन्द्रं सकलकलुष्ठहं प्रेमभक्तचे कगम्यम् ॥ धात्वैवं पूजयेद्भक्तया भगवन्तं जनार्दनम् । धात्वैवं पूजयेद्भक्तया भगवन्तं जनार्दनम् । अङ्गै दिक् पतिभिः सार्ढं वज्ताद्यं श्र यथाक्रमम् ॥ एवमाराधितो देवदेवशः साधकोत्तमैः । विरक्तिसहितां भक्तिं ददाति तत्क्षणात् प्रभुः ॥६॥ प्रेमाख्यस्य मनोर्वक्ष्ये पूजाविधिमथो क्रमात् । ऋषिर्ज्ञ ह्याऽनुष्ट्रपुच्छन्दो देवता प्रेमविग्रहः ॥

में असुरान्तक चकाय स्वाहा, अस्त्राय फट्, पश्चात् नाराच मुद्राके द्वारा तालत्रय प्रदान करेंगे। एवं प्रागुक्त अङ्गादि के द्वारा सुसंयमी साधक करन्यास करे, एवं अन्यान्य कार्य का निर्वाह पूर्ववत् करके निजहृत् पद्ममें घ्यान करें॥ शा जिन की अङ्गकान्ति अत्यन्त तापर्गालत स्वर्णकान्तिवत् परम समुज्ज्वल है, जिनके देह, अक्षि, बाहुद्वय परिमाणतः दीर्घ है। जिनके चन्दनचचित बक्षःस्थल में मनोहर मालती पुष्पके मालायुगल शोभमान है, जिनके श्रीविग्रह आरक्तवर्ण परिधेय एवं उत्तरीयरूप वस्त्रयुगल से शोभित है, एवं नटन लीलारूप महाविद्यान्वित है, सर्वपापहारी एकमात्र भक्तिगम्य उन श्रीचैतन्यचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ। इस प्रकार घ्यानकर हृदयादि अङ्ग इन्द्रादि देववृन्द, वज्यादि अस्त्र समूहके साथ भगवान् जनार्दन की पूजा भक्तिपूर्वक करें। सर्वेश्वरेश्वर श्रीमन्महाप्रभु,-साधक सत्तमगएा द्वारा उक्त प्रकार से आराधित होकर तत्क्षणात् परवैराग्य सहित भक्ति प्रदान करेंगे ॥६॥ प्रेमाख्य मन्त्र की पूजाविधिका वर्णन कररहा हूँ। इसमन्त्रके ऋषि ब्रह्मा,अनुष्टुप्छन्दः,

विश्वम्भरो वीजमन्त्र प्रेमाख्यं स्वयमेव च । शक्तिर्वह्निबधूः प्रोक्तो विनियोगः स्वकर्मणि ॥ षड्दीर्घभाजा प्रेम्ना च कृर्यादेवाङ्घ कल्पनां ।

यथाविधि करन्यासं कृत्वाध्यायेत् समाहितः ॥७॥ ध्यायेद्वालं प्रसन्न तरुणरविकराभासमानं समन्तात् । क्रोड़स्थं मातुरद्धा प्रकटित परमानन्दमालोलदेहम् ॥ देवं विश्वम्भरं तं कलिकलुष्ठहरं दिव्यविप्राङ्गनाभिः । प्रेम्ना संवीक्ष्यमाणं विहसित वदनं रक्तनेत्रोत्पलाढ्यम् ॥ ध्यात्वैवं पूजयेद्भक्तचा पाद्यार्घ्याद्यौ र्यथाक्रमम् ॥८॥ अङ्ग बह्लचादि कोणे तदनु च परितः केशरेष्वेव मातृ दिव्यालङ्कार युक्ताः सुविमल बसनाः पूजयेद्भक्तियुक्तः ॥

प्रेमयिग्रह श्रीविश्वम्भर देवता, स्वयं मन्त्र ही प्रेमाख्यवीज, स्वाहा दाक्ति, प्रेमसिद्धिरूप निज कर्ममें विनियोग है, आकारादि छै दीर्घ स्वरके योगसे पूर्ववत् मन्त्र की अङ्ग कल्पना करे। पश्चात् यथाविधि, करन्यास, तदुपलक्षित अङ्गन्यास कर समाहित चित्तसे ध्यान करे ॥७॥ किशोर वयस्क, प्रसन्नाकृति, वालार्क किरण निकरवत् सर्वतो भावसे शोभमान, श्वोदेवी के क्रोड़स्थित, साक्षादाविर्भूत परमानन्दस्वरूप, लीला विशेषके आवेश से चञ्चलाङ्ग, कलिकलुषहारी एवं अलौकिक रूप्गुग सम्पन्न दिज युवतिगण द्वारा स्वभाव विशेष सिद्धभाव उद्दीम होनेसे अपाङ्ग-भङ्गचादि पूर्वक सम्यक् दृश्यमान हैं। अतएव स्मित शोभितानन, रक्तवर्ण नेत्रपङ्कजाढच सुप्रसिद्ध श्रीविश्वम्भर देवका घ्यान करें, इस प्रकार घ्यान करणानन्तर यथाक्रम से पाद्य अघ्यदि द्वारा भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करें ॥५॥ प्रथमतः नेत्र पूर्वादि दिक् चतुष्टय में

पूज्याभक्ति विभूति स्निभुवन जननी श्रीशचीकान्तिराद्या । शान्तिः शक्तिश्च धात्री तदनुदलगतान् पूजयेद्गन्धपुष्पैः ॥

नित्यानन्दस्तथाद्वं तोमुरारिः श्रीनिवासकः । जगन्नाथस्तथा ज्ञेयः सुदर्शन इति स्मृतः ॥ गदाधरश्च विख्यातः ख्यातोनरहरिस्तथा । दिव्यमाल्याम्बरधराः पुलकाश्रुभराकुलाः ॥ पत्राग्नेविप्रपत्न्यश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः । माधवी वैष्णवी देवीशुभदा सुन्दरी सती ॥ कालिन्दी ललिता दिव्यवासोऽलङ्कार चचिताः । गौरीश्यामा क्रमाज्ज्ञेयाः प्रतिवेशिवराङ्गनाः । तद्बहिर्दिक्षु भक्ताग्रचाः पूजनीया विधानतः ॥ वासुदेवोमुकुन्दश्च रामःशङ्कर एवच । नीलाम्बरो रामदासकविचन्द्रस्ततः परम ॥

अस्त्रमन्त्र षड़ङ्ग की पूजा करें। अनन्तर केशर के मध्यमें पूर्वादि कमसे दिव्यालङ्गार युक्तागुभ्रवसना अष्टमातृ वर्ग की पूजा भक्ति पूर्वक करे, त्रिभुवन जननी भक्ति विभूति, श्रीशचीदेवी, कान्ति, आद्या,शान्ति शक्ति धात्री पूज्या हैं। अनन्तर दलगत श्रीनित्यानन्द, अद्वतमुरारि, श्रीनिवास, जगन्नाथ, सुदर्शन, गदाधर, नरहरि अष्ठजन की पूजा करें। प्रत्येक व्यक्ति दिव्यमाल्य गुभ्रत्रस्त परिधानकारी पुलक एवं अश्रुव्याप्ताङ्ग हैं। परुचात् पत्रके अग्रभाग में लिखित अष्टजम विप्रपत्नी की पूजा यत्नपूर्वक करें। प्रत्येक ही परमौज्जबल स्वभावा, साध्वी शिरोमणि दिव्यवस्त्र अलङ्घार शोभिता प्रतिवेश वासिनी वराङ्गनारूपा है, उनसव के नाम, माधवी, वैष्णवी, गुभदा, सुन्दरी, कालिन्दी, ललिता, गौरी, झ्यामा है। इनसव की चिन्ता— वन्द्रिका

हरिदासस्तथा चन्द्रशेखराचार्य्य एव च । दिव्यमाल्याम्बरधराः सर्वे सङ्गीततत्पराः ॥ तद्बहिर्दिक्षु दिक्पालान् वज्रादींश्च ततोबहिः । पूर्वोक्तयन्त्रे सम्पूज्य दशलक्षं जपेद्बुधः ॥र्द॥ इति भक्तिचन्द्रिकायां षष्ठः पटलः ॥

पूर्वादि अष्टदिक् में यथाकमसे करे। उनके बहिर्भाग में भक्तश्रेष्ठ वासुदेव मुकुन्द, राम, शङ्कर,नीलाम्बर,रामदास कविचन्द्र,हरिदास, चन्द्रशेखराचार्य्य अष्टजन अष्टदिक् में यथाक्रम से यथाविधि पूजनीय है। वे सव दिव्यमाल्य वस्त्तधारी, भगवल्लीला गुण यश:, सङ्कीर्त्तन निरत हैं। इन सबके बहिर्भाग में इन्द्रादि अष्ट दिग्पाल एवं उनके वहिर्भाग में भगवन् पार्धद स्वरूप वज्जादि अष्ट अस्त्राधि देवताकी पूजाकरे। पूर्वोल्लिखित यन्त्रमें सप्तावरण की पूजा यथाक्रम से करके उक्त मन्त्र का जप दशलक्ष बारके द्वारा पुरश्चरण करे।। हति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां षष्ठपटलस्यानुवादः ।

> ञ्चथ सप्तमः पटलः अथमन्त्रवरं वक्ष्ये दाखिंशदक्षरान्वितम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वदुर्वासनानलम् ॥ चतुर्वर्गप्रदं सौम्यं भक्तिदं प्रेमपूर्वकम् । दुर्बुद्धिहरणं शुद्धसत्वबुद्धिप्रदायकम् ॥

...- :*:-

सम्प्रति दालिंशदक्षर युक्त श्रीमन्महाप्रभु के अन्यतम एकमन्त्र को अवलम्बन कर तन् सम्बन्धिकृत्य विधिको कहूँगा। उक्त मन्त्र अप्रारब्ध दुष्प्रारब्ध सब प्रकार पापको विनष्ट करता है, केवल वह ही नहीं, किन्तु सर्वविध पापवीज दुर्वासना पर्यन्त अग्निके समान मूलतः भस्मीभूत करने में समर्थ है. पुनश्च धर्म प्रर्थ काम मोक्षरूप

सर्वाराध्यं सर्वसेव्यं सर्वेषां कामपूरकम् । सर्वाधिकारसंयुक्तं सर्वलोकैकबान्धवम् ॥ सर्वाकर्षणसंयुक्तं दुष्टव्याधि विनाशनम् । दोक्षाविधिविहीनऋकालाकालविवर्जितम् ॥ वाङ्मात्रेणाचितं बाह्यपूजाविध्यनपेक्षकम् । जिह्वास्पर्शनमात्रेण सर्वेषां फलदायकम् ॥ देशकालानियमितं सर्ववादिसुसम्मतम् ॥१॥ तस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः श्टणु । हरेद्वन्द्वं तथा कृष्णद्वन्द्वं व्युत्क्रमणात् पुनः ॥

चतुर्वर्ग फलप्रद है, सुतरां ताहश शान्तिमय फलदाता हेतू सौम्य अर्थात् अनुग्रस्वरूप है, एवं प्रेमलक्षण भक्तिरूप महाफल दाता है, विविध अपराधदुष्ट बुद्धिवृत्ति का अपहरणकारी अथच शुद्धसत्वात्मक भगवत्तत्व साक्षात्कार हेतु उपासकनिष्ठ ज्ञान वृत्तिका प्रकाशक है, अतएव सर्वाराध्य सर्वजन सेवनीय समग्रलोकों के अभीष्ठ फलप्रद यह मन्त्र है। इसमें सवका समान अधिकार है, सवके एकमात्र हितकारी है, समान रूपसे हृदयाकर्षी है, एवं दुष्टकर्म स्वभावज सकल प्रकार व्याधि विनाशकारी है, पुनश्च उक्त मन्त्रमें दीक्षा विधि की अपेक्षा नहीं है, जुद्धाजुद्ध कालविचार भी अपेक्षित नहीं है, जप मालसे ही पूजासिद्ध होती है, सुतरां वाह्यपूजाविधि भी आवश्यक नहीं है। स्वप्रकाशता शक्तिके प्रभाव से साधक गएों की रसनेन्द्रिय मध्यमें आविभूंत होकर ही परम पुरुषार्थ प्रदान करता है, एवं देशकालादि नियमके अन्तभूत नहीं है, अथच वैदिक तान्त्रिक प्रभृति पण्डितगण अविसंवादित रूपसे मन्त्र स्वरूप को स्वीकार किये हैं। अर्थात् उक्त मन्त्रके महामन्त्रत्व में किसीका मतभेद नहीं है ॥ १॥ सम्प्रति पूर्व प्रतिज्ञात मन्त्र का स्वरूप समुद्धार विषयक प्रकार का निदेश

हरेरामद्वयं पश्चादिलोमेनैव तत् पठेत् । सर्वाधहरणाद्धेतोईरिरित्यभिधीयते ॥ भक्तियोगेन सर्वेषां जीवाकर्षण कारणात् । कृष्ण इत्युच्यते सद्भिः शुद्ध सत्व तनुः प्रभुः ॥ रामोऽपि लोकरमणात् संसारच्छेदकारकः । तस्मान्मोक्षप्रदो रामः सर्वशास्त्रेषु कथ्यते ॥२॥ सम्बोधनप्रियः कृष्णः सम्बोधनपदक्रमात् । मन्त्रोऽयं विहितस्तेन तत्र प्रेमा नियोजितः ॥

करता हूँ। एकाग्रचित्त से श्रवगा करो। यहाँपर द्वन्द्व शब्दसे दो वार उक्ति को जानना होगा। सुतरां प्रथमतः 'हरे' यह पदद्वय, 'कृष्एा' पदद्वय, एवं उससे विपरीत कमसे द्विरुक्त पदद्वय को जानना होगा। अनन्तर हरेराम यह पदद्वय का उच्चारण यथाक्रम से दिरुक्तबार करें। दिरुक्त 'हरे' यह पदद्वय, राम यह पदद्वय का पाठ विपरीत क्रमसे करे। विशुद्ध सत्यविग्रह श्रीमन्महाप्रभुही निज भक्तियोग के प्रभाव से सर्वदुःख हरण, सकल वस्तु का आत्म-पर्यन्त आकर्षण, संसारच्छेदन पूर्वक निखिल जगत्में प्रीति सम्पादन कर मन्त्रोक्त हरि, कृष्ण, राम-नामत्नय की मुख्यवृत्ति के द्वारा एकमात्र प्रतिपाद्यवस्तु है, सुतरां मन्त्रोक्त तत्तन्नामत्रय के अर्थ समन्वय हेतुक पूर्वोद्धुत नाममय वाक्य ही श्रीमन्महाप्रभुके मन्त्रहै, इसमें सन्देह उठाने का किसी प्रकार कारण नहीं है ॥२॥ भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य सम्बोधन प्रिय हैं। सम्बोधन शब्द का अर्थ,---अभिमुखीकरण है, वह कार्य प्रायश्वः नामके द्वारा सम्पन्न होता है, सुतरां नामप्रिय श्रीभगवान ताहण नाममय सम्बोधन श्रवण कर निरतिशय प्रीत होते हैं, तज्जन्य सम्बोधन विभक्तघन्त स्वीय नाम पदसमूह के प्रसिद्ध क्रमानुसार श्रीभगवान् के द्वारा उक्त मन्त्र प्रकटित हुआ है। इसको सभी व्यक्ति स्वीकार करते हैं कि-

सर्वनामस्वरूपोयं देहस्वरूप एव च । तत्रैकत यदि प्रेमा सोभयत्र तदा भवेत् ।।३।। चतुर्युगे भवेद्भक्ति र्मुक्तिश्चै व चतुर्युगे । तेन नामानि चत्वारि चत्वारि कृष्णरामयोः ।। भक्ति साधनतः पापनाशोऽथ मुक्ति साधनात् । तत्रोभयत्र नामानि हरेश्चत्वारि, नामतः ।। सम्बोधनपदंश्वत्वा प्रभुस्तत्र समागतः । कि प्रार्थते भक्तजनैस्तदेव दातुमुद्यतः ।।

53

सम्बोधन से स्वयं नामी अभिमुख होकर निज अभीष्ट क्रियाके विषय में विनियुक्त होते हैं, इस नियमानुसार उक्तमन्त्र में श्रीभगवान् भी स्वीय प्रेमसिद्धि विषय में विनियोजित होंगे । श्रीभगवान् में नाम नामी भेद, किम्बा देहदेही भेद न होनेसे श्रीभगवान ही निखिल नामस्वरूप, श्रीविग्रह स्वरूप हैं, यह सर्वशास्त्र सम्मत है। अतएव श्रीनाम एवं श्रीविग्रह, एतदुभय के मध्य में किसी स्वरूप में प्रेम समुत्पन्न होनेसे ही वह जो उभयत्र सिद्ध हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है, तदभिन्न में अभिन्नवस्तु मूलवस्तु के सहित अभिन्न है, यह न्याय सम्मत सिद्धान्त है ॥३॥ सत्यादि युगचतुष्ठय में भक्ति, मुक्ति, उभय वस्तु अनुप्रवृत्त होती हैं, इस अभिप्राय से श्रीकृष्णनाम, श्रीरामनाम, चार चार संख्या में मन्त्रमध्य में निर्दिष्ठ है, भक्ति साधन कृष्णनाम में एवं मुक्तिसाधन रामनाम से भी पापनाश होता है, एतज्जन्य पापनाशक हरिनाम उक्त उभय विषम में प्रत्यक चार चार करके निर्दिष्ठ होकर अष्ठवार प्रयुक्त हुआ है। पश्चात् उक्त नाम कमसे सम्बोधन पदसमूह की श्रवरग कर, भक्तगण की प्रार्थना कचा है, उनके समग्र अभीष्ठ फल प्रदान करने के निमित्त कृतसङ्कल्प होकर प्रभु, जिस स्थलमें भक्तवृत्द, मन्त्रका जप नियमित करते हैं। वहाँ समागत होते हैं, किन्तु भक्तगण निष्काम हैं, भक्तिरूप महाफल से

एतै र्न प्रार्थ्यते किञ्चिन्नामश्रवणयोगतः । वसेत्तेषाञ्च हृदय इत्यम्भूतगुणो हरिः ॥४॥ मन्त्रे मुक्तिविधानार्थं रामनामनियोजितम् । द्वयोर्विरोधात् भक्तानां विधेयं किं तदुच्यताम् ॥ आदौ भक्तचाभवेन्मुक्तिः संसारच्छेदकारिणी । तथाभागवती भक्तिः प्रेमलक्षणलक्षिता ॥ तथाच–नविनाभक्तियोगेन मुक्तिःस्याद् भवसागरात् । तामृते प्रेमदाभक्ति र्न कदाचित् प्रमोः पदे ॥

परितुष्ट होकर वे सव श्रीप्रभुके श्रीचरणारविन्द की सेवा को छोड़कर अन्य किसी वस्तु की प्रार्थना नहीं करते हैं। यह जानकर उक्त नामश्रवण कर भक्तगण के हृदय मध्यमें प्रभू चिरकाल वास करते हैं। श्रीभगवानूके गुणही इसप्रकार निरपेक्ष है ॥४॥ पद्मपुराणादि ग्रन्थमें श्रीरामनाम की तारकसंज्ञा एवं श्रीकृष्णनाम की पारकसंज्ञा विहित है । ''तारकाज्जायते मुक्तिः प्रेमभक्तिस्तु पारकात् ।'' अर्थात् श्रीरामनाम से मुक्ति एवं श्रीकृष्ण नामसे भक्ति मिलती है, अतएव मुक्तिसिद्धि हेतु मन्त्र मध्यमें रामनाम प्रयुक्त है, किन्तु भक्ति एवं मुक्ति उभय ही विरुद्ध पदार्थ है, भक्ति, श्रीभगवान् की अनुकूल भावसे सेवा, एवं मुक्ति ब्रह्मके सहित स्वरूपतः एकीभाव होना, भेदज्ञान भिन्न सेव्य सेवकभाव सम्भव नहीं है, सुतरां वस्तुद्वय का परस्पर विरोध होनेपर भक्तगण का कर्त्तव्य कचा है ? शिष्य द्वारा श्रीगुरुदेव जिज्ञासित होनेसे आक्षेप समाधान पूर्वक सिद्धान्त करते हैं। प्रथम साधक क्रमसे सत्सङ्गादि क्रमसे श्रीभगवदनुग्रह से भक्ति का आविर्भाव भक्तके हृदय में होता है, यह साधन भक्ति है, प्रेरणारूपा है। उसका आनुषङ्किक फलरूप में संसारबन्ध विध्वंस रूप अनर्थ निवृत्ति होती है, वह ही मुक्ति शब्दका यथार्थ अर्थ है, स्वरूपैकच प्राप्तिरूपा मुक्ति ही भक्ति विरोधिनी है, संसारबन्धन

अविद्या सुखदुःखानां विनाशाद्विद्ययायुतः । जीवन्मुक्तः स विज्ञेयः प्रेमभक्ति परायणः ।। अमुना मनुना चैतत् साध्यसाधन तत् परः ।।४ू॥ तत् साधनं प्रवक्ष्यामि यथाविधि क्रमादिह । नित्यानन्दोमुनिः प्रोक्तोऽनुष्टुव्छन्द उदाहृतः ॥ परमास्वरूपः श्रीचैतन्य एव दैवतम् । कृष्णनामेति वोजंस्याद्भक्तिः शक्तिरुदाहृता ।

58

निवृत्तिरूपा मक्ति तो सर्वत्र अपेक्षित है, कारण, संमारबन्ध निवृत्ति न होनेसे प्रेमलक्षण भक्ति होती नहीं है, श्रीभगवान् में अन्य ममता शून्य ममता ही प्रेमभक्ति का स्वरूप लक्षण है, श्रीनारदपञ्चरात्रादि का अभिमत वह ही है। सुतरां तादृण संसारबन्धन से मुक्त होनेसे श्रोभगवद् विषयक प्रेमलक्षण सम्पन्न भक्तिका ग्राविर्भाव होता है। इस विषय में ग्रभियुक्त का बचन इसप्रकार है। तथाच--भक्तिरूप योग अर्थात् उपाय अबलम्बन को छोड़कर जीवका उद्धार दुस्तर ससार समुद्रसे नहीं होता है, उद्धार न होनेसे श्रीमन्महाप्रभू के श्रीचरणों में प्रेमदायिनी भक्ति आविभूंत नहीं होती है, सुतरां वेसव चिरकाल संसार बन्धन में बद्धावस्था में रहजाते हैं, किन्तु पूर्वोद्दिष्ट मन्त्रके द्वारा साधक उक्त मन्त्रसाध्य वस्तुके साधनमें तत्पर हाता है, पश्चात् कमशः पराविद्या का प्रभाव से तत्त्वज्ञान के द्वारा मायावृत्ति अविद्या एवं तन्मूलक सुखदुःखोपलक्षित ससार विनष्ट हानेसे विशुद्ध सत्त्वात्मक पराविद्या सम्पन्न होकर श्रीभगवान् में प्रेमभक्ति होती है। पश्चात् प्रेमभक्ति परायण साधक जीवन्मक अवस्था में जगत् के वद्धजीव को परतत्त्व उपदेश द्वारा भक्तिधर्म शिक्षाप्रदान करते हैं, अवशेष में पार्षददेह लामरूप परममुक्ति प्राप्तकर कृतार्थ होता है। सुतरां उक्त महामन्त्र के अवलम्बन से प्रेमरूप साध्यवस्त का साधन करना मानव मालका अवश्य कत्तव्य है।। प्रायहाँपर पूर्वोदिष्ट महामन्त्र की साधनप्रणाली विधि कहता हूँ।

आद्याशक्तिरधिष्ठात्रीदेवताप्रेमरूपिणी । एतेषां विनियोगः स्यात् प्रेमसिद्धौ प्रभोः पदे ॥ अङ्गन्यासं प्रकुर्वात मन्द्रवर्णविभागतः । हरे कृष्ण हरे कृष्ण हृदयाय नमस्ततः ॥ कृष्णकृष्णेति शिरसे स्वाहा, चैव हरे हरे । शिखायैवषडि़त्येव, कवचाय हुमित्यतः ॥ हरेराम हरेराम, नेत्राभ्यां वौषडि़त्यपि । रामरामेति विज्ञेयमस्नायफट् ततः परम् । हरे हरे ततः कुर्यात् करन्यासमिति क्रमात् ॥६॥ ततो यन्त्रं लिखेन्मन्त्री पद्मं षोड़श पत्रकम् । रेखात्रयसमायुक्तं द्वारतोरणसंयुतम् ॥ अक्षरद्वयमानेन मन्त्रवर्णांल्लिखेद्दले । षट्कोणं विलिखेन्मध्ये कर्णिकायां विधानतः ॥

६४

इस मन्त्रके ऋषि श्रीमन्तित्यानन्द है, छन्द-अनुष्टुप् है परमात्म-स्वरूप श्रीचैतन्यदेव एकमात्र देवता हैं, छुण्णनाम वीज है, भक्तिशक्ति, साक्षाद् भगवद्भक्ति प्रेमरूपा आद्याशक्ति अधिष्ठात्री देवता है, श्रीमन्महाप्रभु के चरणारविन्द में प्रेम प्राप्ति हेतु ही उक्त सव पदार्थों का विनियोग होता है। क्रमश मन्त्रवर्ण समूह का विभागानुसार अङ्गन्यास करे। यथा-हरे इष्ट्रण हरे कृष्ण हृदयाय नमः, कृष्ण कृष्ण शिरसे स्वाहा, हरे हरे शिखाय वषट्। हरे राम हरे राम कवचाय हुँ राम राम नेत्राभ्यां वौषट्,हरे हरे ग्रस्त्राय फट्, ये षट् अङ्गमें यथाक्रम निज निज हृदयादि षट् स्थानमें न्यस्त कर उस क्रमसे ही करद्वय के अङ्गुष्ठादि पञ्च अङ्गुली में एवं करद्वयके पृष्ठमध्य एवं तलदेश में न्यस्त कर करन्यास भी सम्पन्न करे ॥६॥

प्रेमाख्यं मध्यदेशे च कामं बीजञ्च क्रोणतः । एतस्मिन्नपियन्त्रेचाप्याधारादीन्प्रपूज्य च ॥ तत्रैव स्थापयेद्ध्यात्वा यथाविधिक्रमादिति । कनकरुचिरभासः शुद्धसत्वैकवेशो ॥ निजसुमधुरनामाख्यानदानैकदक्षः । सततमवतुविश्वं श्रीनवद्वीपचन्द्रो ॥ निजपरिजनवीतो दीनबन्धुद्विजेन्द्रः । धात्वैवं पूजयेद्भक्तचा परमात्मानमव्ययम् ॥७॥

इद्

तदनन्तर प्रशस्त मन्त्रसाधक षोड्शदलपद्माकार एक यन्त निम्मणि कर उसे मण्डलाकार रेखात्रय द्वारा परिवेष्टित करे, एवं उसमें द्वार एवं तोरण संयुक्त करे। पश्चात् प्रतिदल में दो दो अक्षर परिमाण में मन्त्रोक्त वर्णसमूह का अङ्कत करे । अनन्तर उक्त पद्मके मध्यस्थलस्थ कणिका में विधानानुसार एक सुन्दर षट्कोण मण्डल अङ्कित करे, उक्त षट्कोण के मध्यदेशमें प्रेमवीज, प्रतिकोण में कामवीज लिखें। इस यन्त्रमें पूर्वोक्त पीठन्यास क्रमानूसार आधार शक्ति प्रभूति पीठशक्ति पर्यंन्त न्यासकर यथाविधि, यथाक्रम श्रीभगवानु का ध्यानकर उक्त यन्त्र मध्यमें आवाहनादि क्रमसे उनको स्थापित करें, ध्यान, यथा-गलित स्वणंके न्याय अतिमनोहर कान्ति विशिष्ठ, शुद्ध सत्त्वात्मक असाधारण विविध परिच्छदधारी, स्वकीय परम-मधुर निजनाम सङ्कीर्त्तन एवं उसका उपदेश प्रदान में एकमाल दक्ष, निज नित्य परिकरवृन्द, दीनहीन पतित जनके एक मात्र बन्धु द्विजश्रेष्ठ श्रीनवद्वीपचन्द्र, निरन्तर प्रेमामृतधारा वर्षणकर सन्तत तापत्रय सन्त्रस्त परिहश्ममान विश्ववासी जनवृन्द की रक्षा करे। इस प्रकार श्रीभगवान् का ध्यान कर साधक भक्ति पूर्वक पूजा करे, इस पूजा क्रमभी पूर्व निदिष्ट क्रमसे द्विविध है, प्रथम, मानस पूजा, पश्चात्-वाह्य पूजा, उभय पूजा ही षोड़श, दश,

-

कोणाग्रदिक्षु देशे च पूजयेदङ्गदेवताः । षट् कोणस्याग्रभागे च स सम्पूज्या भक्ति संयुताः ॥ नित्यानन्दोऽद्वंतनामा मुरारिः श्रीनिवासकः । काशीश्वरो मुकुन्दश्च ततः केशरमध्यतः ॥ गदाधरो द्विजवर स्तथा नरहरिः प्रियः । दामोदरो वासुदेवः शिवानन्दगदाधरौ ॥ राधवश्रीरामदासौ सुदरानन्दशाङ्गिणौ । गौरीदासस्ततः पूज्यः परमेश्वर एव च ॥ पुरषोत्तमदासोऽपि तथा वृन्दाबनाश्रयः । गोविन्दो वासुदेवश्च कमलाकर एव च ॥ तद्वहिः पत्रमध्ये च वैष्णवा भक्ति तत् पराः । गोपीनाथो महेशश्च शुक्लाम्बर सनातनौ ॥

219

पश्चोपचार से करे, पश्चात् आत्म समर्पण मन्त्रजप, जपसमपण करे, किन्तु पुष्पोपचार पर्यन्त समर्पण कर वक्ष्यमाण आवरण पुजा करना कत्तंव्य है। यह तन्त्रोक्त नियम है, इसका विवरण उपसंहार में कथित हागा ॥७॥ पूर्वोक्त पद्माकार यन्त्रके अग्नि, नैऋत, वायु, ईशान, कोण चतुष्ठय में हृदय, शिर, शिखा, कवच, अङ्गदेवता चतुष्ठय की एवं अग्रदेशमें नेत्र, पूर्वादि दिक्चतुष्ठय में अस्वदेवता की पूजा करें। अनन्तर पूर्वोक्त पट्कोण मण्डलके अग्रभाग में श्रीभगवत् प्रति सम्पन्न श्रीनित्यानन्द प्रभृति छः जन परम मुख्य पार्षद की, पश्चात् केशर के मध्यभाग में द्विजश्रेष्ठ परम प्रियतम गदाधर प्रभृति षोड़राजन भक्त की पूजा यथाविधि करें। पश्चात्–उनके वहिर्भाग में पत्रके मध्यस्थल में दिक् विदिक् क्रमसे गोपीनाथ प्रभृति अष्ठजन परमप्रीति सम्पन्न वैष्णव की पूजा करें। वे सव, प्रेममय अश्रपुलकादि अष्ठ सात्त्विक भावसे परिव्याप्त तनु हैं, हे श्रीगौराङ्ग !

जगायिमाधवौ ज्ञेयौ वासुदेवाच्युतावपि । दिक्षु पूज्याः प्रयत्नेन प्रेमाश्रुपुलकाचिताः ॥ जय गौराङ्ग गौराङ्ग जय विश्वम्भरप्रभो । इति वावरता नित्यं प्रेमगद्गदभाषिणः ॥ पत्राग्रे तद्वहिः पूज्याः यदुनन्दन एव च । गङ्गादासः केशवश्च कृष्णदासस्ततः परम् ॥ रघुनाथविश्वनाथौ नीलाम्बरसनातनौ । दिव्यमाल्यकराः सौम्याः प्रेमाश्रुपुलकाकुलाः ॥ ततोऽन्यावरणान्येव पूर्ववत् परिपूजयेत् ॥ ८॥ कोट्ये क जपमात्रेण पुरश्चरण मुच्यते । दशांश होम संख्यानां चतुर्गुण विधानतः ॥ जपं कुर्यात् प्रयत्नेन कालसङ्ख्या न विद्यते । मालया कररेखाभि जंपेत् साधकसत्तमः ॥

हे प्रभो विश्वम्भर आपकी जय हो, आपकी निज जय है, शब्दसे जयोत्कीर्त्तन, एवं प्रेमाधिक्य से गद्गद् स्वरसे विविधस्तुति वाकच विन्यासकारी हैं। उन सवके वाहर प्रत्येक करकमल में दिव्यमाल्य है। वे परमसौम्याकृति हैं एवं प्रेममय अश्रुपुलकादि दिव्य सात्त्विक भावसे आतिशय व्याकुलचित्त हैं। आवरण पूजामें इन्द्रादि दिक्पालवृन्द,वज्जादि अस्त्र निकर की पूजा योग्य स्थानमें यथाविधि करें। अनेक आदर्श ग्रन्थमें ४-५ आवरण का उल्लेख आता है, इसका कहीं उल्लेख है ही नहीं, उक्त मतमें चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, ये चार आवरण देवता की पूजा करें। ध्यान, -दशाक्षर मन्त्र की रोतिसे करें ।। पककोटिवार मन्त्र जपसे पुरश्चरण सिद्ध होता है। होमादि कर्ममें असमर्थ होनेसे दशांश होमादि करें। होमादि

विधिर्मन्त्रजपे प्रोक्तः षष्टिदण्डात्मकं दिनम् । स्नानाद्यपेक्षा नास्त्यत्र यथाशक्यं करोतु वा ॥ इत्येवं साधयेन्मन्त्रं स एव साधकोत्तमः ॥६॥ इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायां सप्तमः पटलः ॥

करने में असमर्थ होनेपर चतुर्गु एा जप ही करे। इस पुरुचरएा में काल, संख्या निर्दिष्ट नहीं हैं। जप माला, एवं कर रेखासे जपकार्य निर्वाह करे। जपविधि में तन्त्रोक्त साधक का अनुसरण करें। दिन मान को षष्टिदण्ड में विभक्त कर अनुष्ठान करे, स्नानादि की स्रपेक्षा इसमें नहीं है। अथवा शक्ति का अनुसार सकल किया का निर्वाह करें। वह ही उत्तम साधक है। उक्त प्रकार अनुष्ठान से अवश्य मन्त्रसिद्धि होगी ॥ ६॥

अथाष्टमः पटलः

मन्त्राणां साधनं वक्ष्ये सकामानां विशेषतः । येनैव साध्यते सर्वकर्मसिद्धिरयत्नतः ॥१॥ वाग्भवाद्येन मन्त्रेण शुक्लपद्मेन प्रत्यहम् । वाग्भव प्रकृति देवं रात्रिशेषे विशेषतः ॥

सम्प्रति पूर्वोक्त मन्त्र समूह की साधन प्रणाली का उपदेश करूँगा। जिससे सकांम भक्तगण जप होमार्चनादि का फललाभ कर सुखी होंगे। भगवद् भक्ति की सहायता के विना कर्म फललाभ नहीं होता हैं। कर्म निष्काम भावसे अनुष्ठित होनेसे चित्तशुद्धि होती है।।१।। प्रथम दशाक्षर मन्त्रस्थ कामवीज के स्नान में सारस्वतादि छः वीज प्रयोग करने से उक्त मन्त्र बीज भेदसे छः प्रकार होगा, इसका विवरण प्रथम पटल में मन्त्रोद्धार के समय

शुक्लेन चन्दनेनैव धूपदीपादिभिस्तथा । सम्पूज्य मासमेकश्च सहस्रं प्रजपन् मन्नन् ॥ लभते सर्वविद्याश्च कवित्वं निर्म्भलं सुधीः ॥२॥ श्रीपूर्वेणैव मनुना श्रीशं गौरं समर्चयन् । सित श्रीखण्डपङ्कोपलिप्तेन कुसुमेन च ॥ करवीरोद्भवेनैव सितेनैकशतेन च । प्रभाते प्रत्यहं मासमेकं मन्त्री प्रयत्नतः ॥ जपन् सहस्र तन्मन्त्रान् सर्म्पत्ति लभते न कः ॥३॥ शक्तिपूर्वेणमनुना सर्वशक्तिसमन्वितम् । गौरचन्द्रं समाराध्य पुत्रकामोजितेन्द्रियः ॥

कहा गया है। ऐ सारस्वत बीज, तत्युक्त उक्त दशाक्षर मन्त्र का जप सुबुद्धि साधक १ मास अविच्छेद से करने पर, विशेष कर शेष रात्नि में-श्व तचन्दन धूप-दीप प्रभृतिके द्वारा वाग्बीजात्मक वाग्देवी जिनके स्वरूपभूत शुद्ध सत्त्वात्मक प्रकृति है, उन श्रीकृष्णचैतन्य देवकी यथाविधि सम्यग् भावसे पूजा करें। पूजान्त में सहस्र जप-कर, उसको समर्पण भगवत् चरणों में करे, आप अनायास ही सकल प्रकार विद्या एवं दोष शून्य कवित्त्व शक्ति प्रदान करेंगे ॥२॥ लक्ष्मीबीज पुरःसर पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्रसे शुभ्रचन्दन पङ्कमिश्रित एकशत परिमित शुभ्र करवीज पुष्पके द्वारा एकमात्न आंवच्छेद से प्रतिदिन प्रभात में महा लक्ष्मीपति श्रीमद्गौराङ्ग देवकी यथाविधि अर्चना करतः एवं पूजान्त में सहस्र सङ्घ्रचक मन्त्र जप करतः, ऐसा कौन लब्धमन्त्र साधक जगतमें है, जो धन राज्यादि प्राप्तकर समृद्ध नहीं होगा ? ॥३॥ पुत्तकामी व्यक्ति सुत्तरां जितेन्द्रिय भगवदेकाग्रचित्त शुद्धाचार सम्पन्न गुहस्थ भक्त, शक्तिबीज पूर्वक उक्तमन्त्र के द्वारा विरुद्धाविरुद्ध सर्वशक्तिगण निषेत्वित पदारावन्द

1

सितासपिः समायुक्तैः रक्तपैद्मः समाहितः । हुत्वाऽयुतद्वयं वह्नौ योनिकुण्डे समाचिते ।। सहस्त्रैक प्रमाणेन तथा मन्त्रं जपञ्युचिः । वत्सराभ्यन्तरे पुत्रं लभते वैष्णवं शुचिम् । १८।। ज्वरादि पीड़ितानाञ्च ग्रस्तानां व्याधि सङ्कटैः । शिरस्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रं नृसिंहाद्यक्षरान्वितम् । सहस्रं व्याधिभिर्मुक्तो भवेदेव तदा नरः ॥ ४॥ प्रणवाद्येन तेनैव तत्त्व जिज्ञासुरात्मनः । ज्यासिवेशोत्सवं गौरचन्द्रं भक्तचा समाहितः ॥ हिलसी मालतीजाति कुसुमैश्चन्दनोक्षितैः । समाराध्य जपं लक्षं कुर्वन्मन्त्री जितेन्द्रियः ।। लभते परमां शान्ति संसारच्छेद कारिणीम् । विशिष्टमुत्तमं ज्ञानं जायते नाव संशयः ॥ वशीभवेज्जगत् सर्वं सर्वेस्यूर्बान्धवा नराः । प्रेमसिद्धिः करस्था स्याज्ज्ञानविज्ञानसंयुता ।।६।।

श्रीमन्महाप्रभु की सम्यक् आराधना करे, कुण्ड निर्माण कर उसमें शर्करा घृतमिश्रित रक्तनद्म द्वारा यथा शास्त्र संस्थापित वह्लिमें विंशति सहस्र परिमित होम, एवं एकसहस्र संख्यक उक्त मन्त्र का जप करने से सम्वत्सर कालके मध्यमें ही वैष्णव, सुतरां आजन्म शुद्धपुत्र लाभ करेगा ॥४॥ ज्वरादि व्याधि पीड़ित व्यक्तिके मस्तक को स्पर्शकर नृसिंह बीज पूर्वक उक्त दशाक्षर मन्त्र का जप एकसहस्र वार करने से उक्त व्यक्ति तत्क्षणात् व्याधि मुक्त होगा ॥९॥ भगवत्तत्त्वज्ञानेच्छु साधकजन निज सकाम भक्ति के प्रभाव से एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय होकर सप्रणव पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्रसे

एकैकं काम्यमुद्दिश्य जपपूजास्वतन्त्रता । स्वाश्रमाचार कौशल्यं ब्रह्मचर्यादिकं विधिः ॥ एवं सिद्धिमनुः प्रातः शतजप्तं जलं पिवेत् । मासमेकमिताहारी भवेच्छ्रुतिधरस्तदा ॥७॥

भागवत सञ्चचासीगणके परमोत्सव स्वरूप श्रीगौरचन्द्र की यथाविधि आराधना चन्दन मिश्चित तुलसी मालती जाती पुष्प द्वारा करने से एवं उक्त मन्त्रका जप १ लक्ष करने से संसार बन्ध नाश एवं भक्ति लाभ होता है, अपरोक्षानुभूति भी होती है, तादृश ज्ञान-विज्ञान सम्बलिता परमपुरुषार्थ लक्षणा प्रेमभक्ति होती है।।६॥ प्रत्येक काम्यवस्तु प्राप्ति के निमित्त उक्त मन्त्र समूह का जप, श्रीभगवद् स्रर्चना, निज वर्ण आश्रमोचित ग्राचार अनुष्ठान, ब्रह्मचर्य संरक्षण अवश्य विधेय है, साधक उक्त सिद्धमन्त्र का जप एकमास यावत् प्रतिदिन प्रातः कालमें मिताहार होकर करे, एवं एकमास काल बातवार जप्त जलपान करने से निश्चय ही वह श्रुतिधर होगा ।।७।।

अथ सिद्ध प्रयोगविधिः

अथसिद्धप्रयोगोऽपि लिख्यते साधुसम्मतः । यद् योगाज्जपमात्रेण सिध्यत्येव मनुर्मतः ॥ पुटितं प्रणवेनैव मन्त्रं कृत्वा जपेत् सुधीः । लक्षमेकं हविष्याशी तदासिद्धमनुर्भवेत् ॥ वाग्भवान्तरितं मन्त्रवर्णं कृत्वाजपत्मनुम् । लक्षं नियतवाक्शुद्धः सिद्धमन्त्रस्तदाभवेत् ॥

अनन्तर शिष्ट सम्मत सिद्धप्रयोग को लिखते हैं। जिसके अवलम्बन से जपमात्र से अभिमत मन्त्र की सिद्धि होती है। सुघी

वाक्शक्ति कमलायुक्तं जपेन्मन्त्रं सुसाधकः । लक्षं निशीथे शुद्धात्माक्षीरभोजनमाचरन् ॥ तदासिद्धोभवेन्मन्त्रः सर्वकाम्यफलप्रदः ॥८॥

साधक हविष्यान्न भोजी होकर निज मन्त्र को प्रणव पुटित करके एकलक्ष वार जपकरे तो मन्त्र सिद्धि होती है। संयतवाक् शुचि साधक सरस्वती बीजसे उक्त मन्त्र वर्णको पुटित कर एकलक्ष वार जप करने से सिद्ध होता है। सुसाधक मन्त्री, शुद्धात्माजनके,क्षीरमात्र भोजन कर अर्द्धरात्रमें वाग् बीजयुक्त एवं लक्ष्मीबीजयुक्त मन्त्र जपसे मन्त्रसिद्ध होता है।।दा।

ञ्चथ पुरश्चर्याविधिः ...-:*:-... अथ वक्ष्ये पुरश्चर्याविधि मन्त्रार्थ सिद्धये । यमृते न भवेत् सिद्धिर्मन्त्राणां किमु कर्मणाम् ॥र्द॥ धनैर्वासोयुर्गदिव्यैरलङ्कारै र्मनोरमैः । सन्तोध्य श्रीगुरुं प्रेम्ना वाक्येन सेवयापि च ॥ पादौ कराभ्यां संस्पृश्य प्रणम्य दण्डवद्भुवि । करिष्ये मन्त्रवर्य्यस्य पुरश्चरणमुत्तमम् ॥ आज्ञां मे देहि भगवन् सर्वकाम्यर्थ सिद्धये । एवं प्रसादितः प्रीत्या गुरुणा साधकोत्तमः ॥

अनन्तर निज मन्त्र एवं मन्त्रसाध्य प्रयोजन सिद्धिके निमित्त पुरश्चरण जप, होम, तर्पण, अभिषेक, ब्राह्मण भोजन, पञ्चाङ्ग उपासना क्रियाका विधान बोलूँगा। जिसके विना मन्त्र सिद्धि काम्य-कर्म की सिद्धि नहीं होती है ॥ १॥ अनन्तर प्रचुरधन, बस्त्रादि महामूल्य परमसुहश्य अलङ्क्वार द्वारा तथा मानसिक प्रीति, वाचिक

देवगेहेऽश्वत्थमूले पुष्पोद्याने नदीतटे । पर्वतेस्वर्धुनीतीरे क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥ तेषामेकतमे स्थाने समाहितमनाः शुचिः । आहारादि विहारार्थं क्रोशयुग्मं समन्ततः ॥ क्षीरिवृक्षोद्भवैः काष्ठैः खानितं दिक्षु कल्पयेत् । जपस्थानम् ॥१०॥

कूर्मचक्रं नवकोष्ठसमन्वितम् । अष्टवर्गं लिखेत्तत्रक्षेत्राख्याद्याक्षरं यतः ॥ तन्मुखं तद्भवेत्तत्रचैलाजिन कुशोत्तरम् । आसनं स्थापयेन्मन्मन्त्रैर्मन्द्रितं तत्र साधकः ॥

स्तुति, कायिक परिचर्थ्या ढारा एवं तन्त्रोक आवाहनादि पूजाविधि के ढारा श्रीगुरुदेव को सन्तुष्ठ कर वामहस्त से वामपद, दक्षिण हस्त से दक्षिण हस्तको स्पर्शकर दण्डपातवत् भूमिमें साष्टाङ्ग प्रणाम कर प्रार्थना करे। हे भगवान् ! मैं सर्वश्रेष्ठ दणाक्षर मन्त्रका पञ्चोगासन पूर्वक सर्वोत्तम पुरुवचरण कर्म प्रारम्भ करूँगा, आप अनुमति प्रदान करें। णिष्यसे प्रायित होकर श्रीगुरुदेव स्वाभाविक वात्सल्य वशतः अनुज्ञादान एवं उक्त कर्महेतु मन्त्रद्रीक्षा प्रदान करेंगे। पश्चात् साधक देवालय, अश्वत्थतल पुष्पोद्यान पुण्यनदीतीर पर्वतश्व्युङ्ग गुहा नितम्बभूमि समुद्रतीर श्रीजगन्नाथक्षेत्र, गङ्गातीर स्थान समूहके मध्यमें किसी एक स्थानको मनोनीत करे। आहारादि चेष्टा स्वच्छन्द भ्रमण प्रभृतिके लिए चतुर्दिक में चारक्रोश स्थान सीमावद्ध करे। उक्तस्थान को चिह्नित करनेके लिए क्षीरिवृक्ष काष्ठ निम्मित ढादश अङ्गुल परिमाण चार कीलक प्रस्तुत करे, उक्त कीलक को अस्त्रमन्त्र से ग्रभिषिक्त कर चतुर्दिक के चार कोण में प्रोथित करे, उसके पहले अष्ठदिग्पाल की पूजा उपहार ढारा करे ॥१०॥ प्रुवोंक्त

N

स्वस्तिकं कमलद्वापि बद्धासनमनन्य धीः । उपविश्य च पूर्वेद्युर्गीयत्नीं प्रजयेत सुधीः ॥ सङ्कल्पतिलकुशाभ्यां प्रायश्चित्तविधिक्रमात् ॥१९॥ ततः प्रारम्भदिवसे प्रातः स्नात्वासनोपरि । उपविश्य च सङ्कल्पं कृत्वा न्यस्ततनुः शुचिः ॥ मन्त्रं नैव द्रुतं नैव विलम्बितमनन्यधीः । ध्यायन् मन्त्राक्षरं देवं दशधा संस्कृतं पुनः ॥ जयेत् सूर्य्योदयात् यावन्मध्यन्दिनं समाहितः ॥१२॥ यावत् संख्योजपस्तत्र दिवसे तावदन्वहम् । त्रिकालपूजा कर्त्त्तच्या हरिर्द्रव्यं निवेदयेत् ॥

जपस्थल में नवकोष्ठ युक्त पूर्वादि क्रमसे कादि पञ्चवर्ण एवं यादि शादि व लक्षरूप तथा अ आ इत्यादि क्रमसे स्वरवर्ण समूह को विभक्त कर आठ कोष्ठमें एवं मध्य कोष्ठमें विन्यस्त कर एक कूर्मचक्र का निर्माण करे। तन्मध्ये जपस्थान नामका आद्य अक्षर जहाँपर होगा, उसको उक्त चक्रका मुख मानकर उसके उपर कुशमय आसन उसके उपर मृदु मृगचर्म तदुपरि मृदुवस्त्रासन मन्त्राभिषिक्त कर स्थापन करे। पश्चात् सुधी साधक उसके उपर स्वस्तिकासन पद्यासन से उपवेशन कर एकाग्रचित्त से प्रायश्चित्त विधिके अनुसार सङ्करत्प कर पूर्वदिन गायत्रीका जप करे ।।११।। नित्यकृत्य समापनके अनन्तर पुरश्चरण कियाके आरम्भ दिनमें साधक प्रातःस्नान के अनन्तर आसन में उपवेशन कर सङ्कर्लप पूर्वक मानुकादिन्यास कर अनन्तर आसन में उपवेशन कर सङ्कर्लप पूर्वक मानुकादिन्यास कर अनन्तर आसन में उपवेशन कर सङ्कर्लप पूर्वक मानुकादिन्यास कर अनन्तर आसन में उपवेशन कर सङ्कर्लप पूर्वक मानुकादिन्यास कर अनन्त्यचित्तसे मन्त्राक्षर स्वरूप श्रीमन्महाप्रभु की चिन्ता करत: समाहित होकर जननजीवनादि दशविध संस्कारसे संस्कृत मन्त्रका जप अनतिद्रुत अविलम्वित भावसे प्रातःकाल से मध्याह्नकाल पर्यन्त करे ॥१२॥ पुरश्वरण आरम्भ के प्रथमदिवस में जो संख्या नियमित

शेषभोजी मिताहारो मितवाक् प्रियभाषणः । स्त्रियाः सम्भाषणं त्याज्यं शूद्रसम्भाषणं तथा ॥ मनः प्रलोभनं कार्यं न च नाना मनोरथैः ॥१३॥ एवं पूर्णजपो हुत्वा होमाशक्तौ विधानवित् । दशांश होम सङ्ख्वचानांचतुर्गुणमनुं जपेत् ॥ तर्पणञ्चाभिषेकञ्चकुर्यान्मन्त्री विधिक्रमात् । बाह्यणान् भोजयेद्भक्तचाकृतकार्य्यो भवेत्सुखी ॥

होगी उसका निर्वाह शेषदिन पर्यन्त होगा, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल कालत्रय में यथाविधि श्रीमहाप्रभु की पूजा करे । पूजान्त में निवेदित वस्तुका ग्रहण करे, मिताहारी मितभाषी प्रियभाषी होना आवश्यक है। स्त्री शूद्र सम्भाषण त्याग करे। विविध सङ्कल्प द्वारा निज अन्तःकरण को प्रलोभित करना सर्वथा म्रविधेय है, अर्थात् ब्रह्मचर्यं को अवलम्बन कर विषयान्तर से मनको प्रत्याहृत कर मन्त्रार्थभूत श्रीभगवान् में एकाग्रकर स्वीय मन्त्रका जपकरे ॥१३ इस प्रकार मूलमन्त्र की जपसंख्या को पूर्णकर विधानवित् साधक जपसंख्या के दशांश क्रमसे होम करे। होम कियामें असमर्थ होनेसे पूर्वोक्त होमसंख्याके चतुर्गु एामन्त्र जप करें। पश्चात् मन्त्रो, दशांश संख्याक्रम से यथाविधि तपंण अभिषेक कियाको पहले की भाँति सम्पन्न करे। अनन्तर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मण भोजन करावे। जो जो ग्रङ्गहीन प्रतीत होगा, उसे पूर्ण करने के निमित्त उसका द्विगुण मन्त्र जप करें। यह विधान भी असामार्थ्य पक्षमें है। इसमें असामार्थ्य होनेसे विशेष रूपसे ब्राह्मण भोजन करावे। अवशेष में अर्थात् यथाविहित मूलमन्त्र का जप समाप्ति में श्रीमन्महाप्रभु की पूजा, अनुष्ठान महोत्सव विशेष रूपसे करें। एवं उसमें गो, भूमि, हिरण्य, वस्त्रादि को दक्षिणारूपमें देकर श्रीगुरुदेव का सन्तोष सम्पादन करे, सदक्षिणा भक्ष्यभोज्य, गन्धमाल्य वस्त्रादि द्वारा ब्राह्म गण को

12

एवं प्रमाणमालम्व्य कलौ संख्याचतुर्गुणा । एवं चतुर्गुण जपात् सिद्धोमन्त्रो भवेन्नृणाम् ।।१४।।

परितुष्ट करें। पश्चात् दीन, अन्ध, कृपण अनाथ जनों को भोजनादि प्रदान से परितृप्त करें। पूर्वनिर्दिष्ट मन्त्रजप की संख्या दशलक्ष है। कलिमें उस संख्या चतुर्गुण विहित है। इससे साधक जीवन्मुक्तावस्था में कृतकृतार्थ होगा।।१४।।

ञ्चथोपसंहारः ।

वैराग्येण विना मन्त्रसिद्धिर्नो जायते रृणाम् । तस्मात् सर्वः प्रयत्नेन विरक्तः प्रजपेन्मनुम् ॥१॥ वैराग्यं वासना शौन्यमिहामुत्र च दैहिके । कामात् क्रोधाच्च मोहाच्च दम्भाहङ्कार योगतः ॥ मात्सर्य्याल्लोभतो जाता वासना दुरवग्रहा । तया संसक्तमनसां कार्यसिद्धिर्न जायते ॥२॥

अध्यात्म शास्त्रके मतमें अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा ही मनोनिरोध होता है। उससे अन्तःकरण शुद्ध होता है। भक्तिशास्त्र के मतमें शुद्धाभक्ति में स्वल्प रुचि होने से ही गरिष्ठ विषयराग आशु विलीन होता है। सुतरां विषय वैराग्य को छोड़कर सकाम निष्काम व्यक्ति की सिद्धि नहीं होती है, तज्जन्य साधक विषय से विरक्त होकर हढ़तर अभ्यास पूर्वक निजेष्ट मन्त्रका जप करे ॥१॥ इहलोक परलोक में जो भी विषय देहसम्बन्ध प्रयुक्त दृष्टादृष्टरूप भोग्य वासना विशिष्ट है, उसे राग कहते हैं, उक्त तृष्णाशून्य होना ही वैराग्य है। दुर्वासना को वासना शब्दसे जानना होगा, गीता में शुद्धवासना को देवीसम्पद, आसुरीसम्पद को दुर्वासना कहते हैं। प्रथम मोक्षोपयोगी है, द्वितीय संसार बन्धका कारण है, एवं हेय है।

प्रोतो देवो वरं दाता स च प्रीतः कथं भवेत् । दुर्वासनापरित्यज्य सदा सद्वासनायुतः ॥ कायेनमनसावाचा स्वधर्मपरमानसः । यथाविधिक्रमेनैवजपन्मन्त्रं सुसाधकः ॥३॥ यदा कृष्णभजेद्भक्तया नित्यसन्ध्यात्रये सुखी । तन्नामनिरतोऽभीक्ष्णं तत् पादमननोत्सवः ॥ तत्कथा श्रवणोल्लासी भ्रृशं तद्रूपर्दर्शकः । एवश्चे चिरपेक्षोऽपि सापेक्षो वा समाहितः ॥ युर्वाज्ञामननासक्तो गुरुदेवात्मकोऽनिशम् । तदा प्रितमनाः कृष्णो निरपेक्षाय सादरम् ॥

195

काम, कोघ, मोह, दम्भ, अहङ्कार, मात्सर्थ्य, लोभ, ईव्यी, असूया प्रभृति को दुष्ट वासनाकान्त मानते हैं। यह सव अनर्थ का मूल है, उससे चित्त विक्षिप्त होता है, एवं कार्यसिद्धि की सम्भावना नहीं रहती। शुद्ध वासना का उदय होनेपर उसकी निवृत्ति होती है, अतएव सारासार विवेक के द्वारा विषय वितृब्णा होना श्रेयस्कर है।।२।। देवता प्रसन्न होनेसे साधक अभीष्ट फललाभ करता है। किन्तु वह प्रसन्न कैसे होगा? इसके उत्तर में कहते हैं — दुर्वासना को छोड़कर साधक सर्वदा सद्वासनायुक्त बनें। कायवाक्य मनसे स्वधर्मानुष्ठान करे, पाश्वरात्रादि शास्त्रोक्त विधिसे श्रीगुरूपदिष्ट मन्त्रका जप करके त्रिसन्धचा में श्रीचंतन्य देवकी उपासना भक्ति पूर्वक करें।।३।। निरन्तर श्रीप्रभुके नामसङ्घीत्त्तन में तत्पर, उनके श्रीचरण ध्यान में ही उत्सव, एवं उनके कथामृत का पान श्रवण पुटसे करने में उल्लास, एवं श्रीविग्रहमाधुरी दर्शन, स्वरूपभूत सौन्दर्थ्यानुभव में निमग्न हो जाय। इस रीतिके साधक, सकाम हो, ग्रथवा निष्काम, यदि श्रीप्रभुके चरणों में एकाग्रचित्त होते हैं।

निजपादाम्बुजे प्रीति ददाति प्रेमलक्षणां । सापेक्षाय यथाकाम्यं ददाति वरमुत्तमम् ॥ नान्यथा जायते सिद्धिः कोटि संख्यजपादिभिः ॥४॥ वैराग्यं जायते केन क्षिणोति वासनां कुतः । यतः सिद्धिमवाप्नोति सर्वकल्याणसाधिकाम् ॥४॥ सन्नद्धा वैब्णवे शास्त्रे गुरुवाक्ये च साधवः । साधुसङ्ग`न शास्त्रोक्तघा गुरुभक्तिः सुनिष्ठिता ॥ तन्निष्ठशास्त्रसिद्धान्ते प्रतीतिर्जीयते नृणां तद्दाक्येन हि संज्ञानं जायते तेन तत्त्वतः ॥ भद्राभद्रं विजानीते त्याज्यं ग्राद्यां विशेषतः । त्यजेत्त्यागकृताभ्यासो ग्राह्यग्रहणतत्परः ॥

तब उस समय स्वयं भगवान श्रीकृष्णचैतन्य प्रीतमनाः होकर ग्रादर पूर्वक उस भक्तको निज चरणारविन्द में प्रेमलक्षणाभक्ति प्रदान करते हैं। सकाम को निज कामनानुसार फलदान करते हैं। अन्यथा कोटिसंख्यक मन्त्र जपसे भी मन्त्रसिद्धि नहीं होगी। शा पूर्वलक्षित वैराग्य उत्पन्न किससे होता है ? एवं उक्त वैराग्य ही किसहेतु जीब को बासना क्षय करने में कारण बनता है, जिस वासना का क्षय होनेपर जीव सर्वमङ्गल साधिका सिद्धि लाभ करता है। यहाँ सिद्धि शब्दसे अन्तःकरण की कामादि सर्वदोषक्षय कारिणी स्वभावतः परमानन्तमयी श्रीभगवत् स्फूर्त्ति को जानना होगा॥ शा साधुगण वैष्णव शास्त्रमें एवं गुरुवाकच में बिश्वास सम्पन्न होते हैं। साधुसङ्ग एवं शास्त्रोक्ति द्वारा गुरुभक्ति सुप्रतिष्ठित होती है, पश्चात् श्रीभगवनिष्ठ शास्त्रसिद्धान्त में मनुष्य की श्रद्धा उत्पन्न होती है, गुरुवाकच एवं शास्त्रवाकचके द्वारा टढ़तर ज्ञान उत्पन्न होनेसे, उसके अनुसार परमार्थतः भद्राभद्र एवं विशेषतः कौन वस्तु त्याज्य, कौन

एवं सञ्जायते ज्ञानं विज्ञान सहितं ततः । तेन ज्ञानेन संच्छिन्ना भवेद् दुर्वासना भृशम् ॥६॥ यथा बुद्धचा यजन् कृष्णमातप्तकनकोज्ज्वलम् । जपेन्मन्त्रं यथासङ्घः मन्वदेवैकविग्रहम् । एवं सिद्धमनुर्मन्त्री कृतकार्य्यो यथासुखम् ॥ विहरेत् परमप्रीत्या परमानन्दविग्रहः ॥७॥ इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायामष्टमः पटलः ॥

वस्तु ग्राह्म, विशेष रूपसे उसको जानसकता है, ग्राह्म वस्तुका ग्रहण तत्पर होकर त्याज्य वस्तुका त्याग विषयमें अभ्यस्त होनेसे क्रमशः विज्ञान सहित ज्ञान उत्पन्न होता है। विज्ञान शब्दसे भगवत्तत्त्व का साक्षात् अनुभव, एवं ज्ञान शब्दसे शास्त्रोक्त शब्दजन्य परोक्षानुभूति का बोध होता है। एतादृश विज्ञान द्वारा जीवकी दुर्वासना आत्यन्तिक रूपसे समुच्छिन्न हो जाती है।।६॥ प्रतप्त कनकके सहश परमोज्ज्वल कान्ति विशिष्ट श्रीगौरहरि की भावना कर इष्टमन्त्र का जप करे, विधिबुद्धिमें मन्त्र एवं देवता में अभेदबुद्धि करना विधेय है। इस रीतिसे साधक, यथारीतिसे भगवदाराधनारूप विहित कार्यानुष्ठानके द्वारा श्रीभगच्चरणमें परमग्रीति प्राप्तकर परमानन्दमय पार्षददेह का अधिकारी होता है, एवं जीवन्मुक्त अवस्थामें ग्रवस्थान् करता है ॥७॥

> इति श्रीभक्तिचन्द्रिकायामष्ठपटलस्यानुवादः ॥ —=०%**%*%०==--







प्र०ग्रन्थरत्न] श्रीहरिदास्झास्त्रि सम्पादिता ग्रन्थावली [प्र०सहायता

१ वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्" महर्षि श्रीकृष्ण द्वंपायन व्यासदेव प्रणीत, ब्रह्मसूत्रों के अकृतिम अर्थ स्वरूप श्रीमद्भागवतके पद्यों के द्वारा सूत्रार्थों का समन्वय इसमें मनोरम रूपमें बिद्यमान है।

२ श्रीन्सिंह चतुर्दशी भक्ताह्लादकारी श्रीनृसिंहदेवकी महिमा, व्रतविधानात्मक अपूर्व ग्रन्थ ।

३ श्रीसाधनामृतचन्द्रिका गोवद्वंन निवासी सिद्ध श्रीकृष्ण दास बाबा विरचित रागानुगीय वैध्णव पद्धति।

४ श्रीसाधनामृतचन्द्रिका (वङ्गला पयार) गोवर्ढन निवासी सिद्ध ओकुष्णदास बाबा के द्वारा सूललित छन्दोवद्ध ग्रन्थ। 8.20

५ श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति गोवद्धन निवासी सिद्ध श्रीकृष्णदासबाबा विरचित सपरिकर श्रीनन्दनन्दन श्रीभानुनन्दिनी के स्वरूप निर्णयात्मक ग्रन्थ।

६ श्रीराधाकृष्णार्चन दीपिका श्रीजीवगोस्वामिपाद कृत श्रीराधासम्वलित श्रीकृष्ण पूजन प्रतिपादन का सर्वादि ग्रन्थ।

७ श्रीगोविन्दलीलामृत (मूल, टीका, अनुवाद सह-१-४सर्ग) श्रोकृष्णदास कविराज कृत रागानुगीय स्मरणाङ्ग निर्वाहक ग्रन्थ।

 एेश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद) श्रीवलदेव विद्या-मूषण क्रुत भागवतीय आंकृष्णलीलाका क्रमबद्ध ऐश्वर्य मण्डित गर्णन, श्रीवृषभानु महाराज, एवं भानुनन्दिनीका मनोरम वर्णन इसमें है।

९ संकल्प कल्पद्र म (सटीक, सानुवाद) श्रीविश्वनाथ चकवत्तिपाब कृत स्वारसिकी उपासनाका प्रमुख ग्रन्थ।

१० चतुःश्लोको भाष्यम् (सानुवाद) श्रीनिवासाचार्यप्रभु कृत चतःश्लोको भागवत को स्वारसिकी व्याख्या।

११ श्रीकृष्णभजनामृत (सानुवाद) श्रीनरहरिसरकार ठक्कुर कृत अपूर्व धर्मीय संविधानात्मक ग्रन्थ।

8.40

2.00

3.00

0.20 8.00

80.00

3.40

2.00

2.20

१२ श्रीप्रेमसम्पुट (मूल, टोका, अनुवादसह) भीविक्ष-	
नाथचकवर्त्ती कृत भागवतीय रास रहस्यवर्णनात्मक हृदयग्राही ग्रन्थ	8.00
१३ भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद) श्रीलोका-	
नन्दाचार्य प्रणीत भक्तिरहस्य परिवेषक अनुपम ग्रन्थ ।	3.9%
१४ भगवद्भक्तिसार समुच्चय (सानुवाद बङ्गला)	
आलोकानन्दाचार्य प्रणीत, भक्तिरहस्य प्रकाशक मनोहर ग्रन्थ।	3.00
१५ व्रजरोति चिन्तामणि (मूल, टोका, अनुवाद)	
श्रीविश्वनाथचक्रवीत्त ठक्कुर कृत व्रजसंस्कृति वर्णनात्मक	
अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ ।	8.00
१६ श्रीगोविन्दवृन्दावनम् (सानुवाद) बृहद् गौतमीय	
तन्त्रान्तर्गत श्रीराधारहस्य परिवेषक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ ।	8.20
१७ श्रीराधारस सुधानिधि(मूल बङ्गला)श्रीप्रवोधानन्द	
सरस्वतीपादकृत श्रीराधा महिमा प्रतिपादक अनुपमेय ग्रन्थ ।	2.92
१८ श्रीराधारस सुधानिधि (मूल हिन्दी)	0.50
१९ श्रीकृष्णभक्ति रत्नप्रकाश (सानुवाद) श्रीराघव	
पण्डित रचित श्रीकृष्णभक्ति प्रकाशक अनुपम ग्रन्थ।	2.00
२० हरिभक्तिसार संग्रह (सानुवाद) श्रोपुरुषोत्तमधर्म	
प्रणीत श्रीभागवतीय क्रमबद्ध भक्ति सिद्धान्त संग्रहात्मक ग्रन्थ।	82.00
२१ श्रुतिस्तुति व्याख्या (अन्वय, अनुवाद) श्रीपार	
प्रबोधानन्द सरस्वती कृत वेदस्तुति की वजलीलात्मक व्याख्या।	28.00
२२ श्रीहरेकृष्ण महामन्त्र "अष्टोत्तरशतसंख्यक"	0.80
२३ धर्मसग्रह (सानुवाद) श्रीवेदव्यास कृत धर्मसंग्रह	
श्रीमद्भागवतीय ७म स्कन्ध के अन्तिम ११, १२, १३, १४, १४	
अध्यायों का वर्णन ।	3,98
२४ श्रीचैतन्य सूक्ति सुधाकर श्रीचैतन्यचरितामृत, तथा	
श्रीचैतन्यभागवतीय सूक्तियों का संग्रह ।	8.00
२५ सनत् कुमार संहिता (सानुवाद) व्रजीय रागानुगा	
उपासना प्रतिपादक सुप्राचीन ग्रन्थ।	2.20